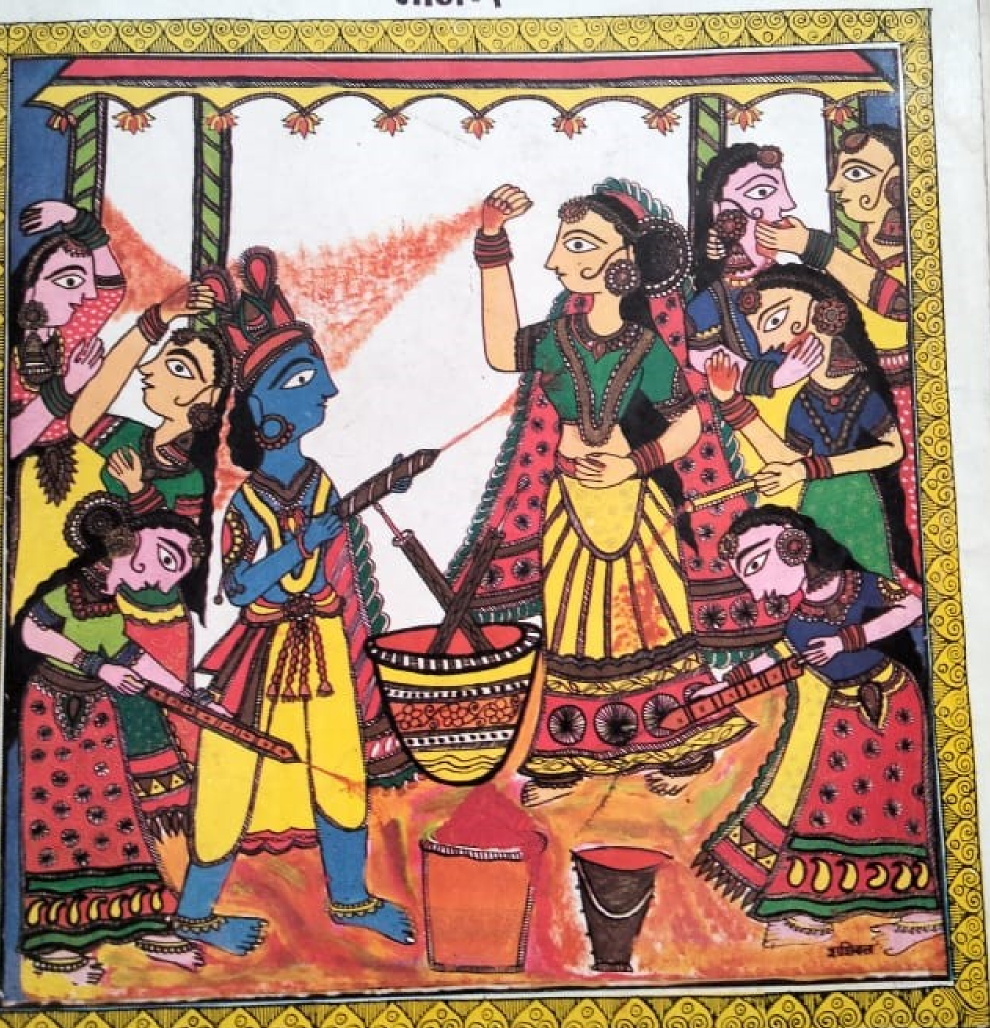
मिथिला चित्र शिक्षा

भाग - १



भारती विकास मंच

मिथिला चित्र शिक्षा

भाग - १



भारती विकास मंच

मिथिला चित्र शिक्षा

भाग - १

लेखक

कृष्ण कुमार कश्यप

एवं

शशिबाला

भारती विकास मंच

बरहेता, भहेरियासराय, दरभंगा-८४६००१

बिहार

प्रकाशक एवं
मुख्य वितरक : भारती विकास मंच
बरहेता, लहेरिया सराय,
दरभंगा (८४६००१) बिहार।
फोन: (०६२७२)-२४७१०
फैक्स: ,, -२४०२०

प्रतिलिप्याधिकार : कृष्ण कुमार कश्यप
एवं शशिबाला

हस्तलिपि
एवं निर्देशन : कृ॰ कु॰ कश्यप

प्रयोग और रेखांकन : शशिबाला

संस्करण : नवम्बर, १९९९ ई॰

मूल्य : 150/-

छायांकण एवं मुद्रण : श्री छाया, काजीपुर, पटना-४

पूर्वकथा

मेरे पिताजीकी एक मैथिली कविता है —

"जेना दीपमे टेमि,
टेमिमे तेल,
तेलमे जहिना ज्योति प्रकाशे;
तहिना तनमे प्राण,
प्राणमे कम्प,
कम्पमे तहिना सुख आभासे!"

(इन्द्र)

जब कोई व्यक्ति अपने जीवन-कालमें ही किसी सिद्धान्तके निरूपण, परीक्षण, परिमार्जन और प्रचलन तककी स्थितिसे गुजरता है तो क्षण भरकेलिए उसका मन अपने कर्मतरुकी सुखद छाँव तले विलम जाना चाहता है, और उसके विस्तारकी निहार-निहार कर निहाल होता रहता है। मनका यही पुलक उसका पुरस्कार होता है। यह सुख उस समय और भी बढ़ जाता है जब वह आदमी अपने ही उस 'वृक्ष' के

नीचे बहुत छोटा दीखता है।

यह पुस्तक शिक्षाकी एक विशिष्ट पद्धति, शिल्पके माध्यमसे '**जीवन और शिक्षण**' सिद्धान्त पर आधारित है और इसके साथ मैं अपने शैशव-कालसे जुड़ा रहा हूँ। उन दिनो, सन् १९६१-'६२ में, जब मैं महज बारह-तेरह वर्षोंका था, एक बहुत बड़ा आघात लगा; पैसे-रुपयेके अभावके कारण मुझे विद्यालयसे निकाल दिया गया था। उस समय शिक्षक महोदय संत विनोबाका लेख 'जीवन और शिक्षण' पढ़ाने आए थे। वही लेख मेरे जीवनका पाथेय बन गया। आजतक मैं विनोबाके उसी मंत्रके अक्षय प्रवाहमें प्रयोगानुरक्त, बहता आया हूँ। यह पुस्तक उसी प्रवाह-यात्राकी एक भेंट है; कृपया इसे स्वीकार करें।

उस दिन देवोत्थान एकादशीका पर्व था। इस दिन मिथिलाकी गुणवती स्त्रियाँ अपने आँगनमें विस्तृत अरिपन बनाकर श्रीलक्ष्मी-नारायणका स्वागत करती हैं। मेरी माताजी चावलके श्वेत रंग (पिठार) लेकर, हाथकी उँगलियोंसे भूमि पर अरिपन बनाती जा रही थीं और मैं अपलक लेखनकी इस अनोखी विधिका अवलोकन कर

रहा था। रातमें देखा, कार्तिक मासकी दुधिया चाँदनीमें गोल-तिकोने या चौकोर ज्यामितिक अरिपनके धवल चित्र किसी तालावमें खिले श्वेत कमल-से डोलते, बतिया रहे थे। मुझे लगा कि पूरे आँगनमें फैले अरिपन ज्यामितिके सुलझे-अनसुलझे साध्योंकी तरह, एकके बाद एक पन्नेके-जैसे उघड़ते जा रहे हैं और तरह-तरहके अक्षर, चित्र और आकृतियाँ उन्हीं रेखाओंके किसी कोणसे निकल कर फिर उन्हींमें समा रही हैं।

मुझे अनुभव हुआ कि रेखागणितके कुछ चिन्ह हैं, जो आपसमें एक-दूसरेसे मिल कर कोई अक्षर, आकार या चित्र बनाते हैं; और उन चिन्होंके प्रयोग सभी लोग करते हैं — पढ़े, अनपढ़े, बच्चे — हर कोई।

आगे चल कर यह अनुभव और गहराया, जब मैंने निपट निरक्षर मजदूर स्त्रियोंको घरकी दीवार पर चूना और गेरूके लाल रंगसे तरह-तरहके फूल-पत्ते और रंग-विरंगे चित्र बनाते देखा। मैं उन निरक्षर शिल्पियोंको चित्र बनाते देख कर बहुत प्रसन्न और अचम्भित था। मैं सोचने लगा कि यदि कोई व्यक्ति एक **वृत्त** के चारों और **अर्द्धवृत्त** ०ᴐ∪∩ या आड़ी-तिरछी **रेखाएँ** –।\

लगा कर एक फूल बना सकता है ❀ तो उन्हीं चिन्होंसे ऐसे लोगोंको अक्षर लिखना-पढ़ना क्यों नहीं सिखाया जाता? उन दिनी मेरी आयु मात्र सोलह-सत्रह वर्षोंकी थी और उस समय मैं बहुत अधिक विचारात्मक गहराईमें तो नहीं जा सकता था, किन्तु इतनी बात मैं उस समय भी स्पष्टतः समझने लगा था कि हमारे देशके जो समुदाय आज भी शोषित-दमित और अनपढ़ हैं, उनकी शिक्षाके लिए किसी ऐसी पद्धतिके चलनकी जरूरत है, जिसमें उनके परम्परागत ज्ञान जैसे चित्र, गीत, कथा, कृषि आदि विषयोंको शैक्षिक महत्व प्राप्त हो।

इन्हीं तर्कोंके आधार पर मैंने **हिन्दी वर्ण-माला** सीखनेका एक चार्ट तैयार किया, जिसका प्रारम्भ रेखागणितके पाँच चिन्हों (**o ɔ — । **) से हुआ था और अक्षरोंका क्रम ज्यामितिक आकारके हिसाबसे रखा गया था; जैसे **उ ऊ अ आ / ओ औ अं अः / र ए ऐ स / व ब क ख / न म भ झ** आदि....

सन् १९६६ ई० में मैंने ग्रामीण मित्रोंके साथ मिल कर अपने गाँव (बरहेता) में एक **रात्रि पाठशाला** की स्थापना की, जिसमें हम तीन मित्र मिल कर छोटे बच्चों,

मजदूर बच्चों और निरक्षर प्रौढ़ोंको संध्याकाल पढ़ाया करते थे। उस पाठशालामें मैं अपने चार्टके आधार परही पढ़ाता था और मैंने देखा कि उस विधिसे सिखाने पर बच्चे एवं प्रौढ़ आसानीसे, कम समयमें ही वर्णमाला सीख लेते थे। बादमें इसी चार्टकी नींव पर मैंने **आखर** पुस्तककी रचनाकी, जिसके माध्यमसे बिहारके अनेक भागोंमे घूम-घूमकर मैंने निरक्षर समुदायोंके बीच साक्षरता और चेतना-विकासके कार्य किया।

जय प्रकाश आन्दोलन (१९७४-'७७) के क्रममें मैं बिहार और नेपालके अनेक भागोंमे सक्रिय रहा। इस दौरान मैंने निर्धनता और निरक्षरताकी दोहरी मारसे त्रस्त दीन-हीन लोगोंके अद्भुत कला-कौशलका परिचय प्राप्त किया। तीव्र आन्दोलनकी भाग-दौड़के बीच मैंने भुइयाँ, डोम, हलखोर, बिहोर, नट, बक्खो, करोड़िया, दुसाध, मुसहर, मुसलमानके अलावे अनेक पिछड़ी जातियों, उच्चवर्णी और नेपालकी मैथिल स्त्रियोंके बीच रहकर साक्षरताके कार्य करते हुए ग्रामीण हस्तशिल्प और लोकविद्याके विराट दर्शन किया। जनकपुर (नेपाल) की कुछ निरक्षर चित्रकार महिलाओंको अक्षर-ज्ञान करानेके क्रममें मैंने

चित्रसे अक्षर बनानेका प्रयोग किया था जो आशासे अधिक सफल रहा। इस प्रयोगने मुझे भविष्यकी एक स्पष्ट दिशा दी।

इतना कुछ देखने-समझनेके बाद मुझे इस सत्यका निश्चय हो गया कि ग्रामीण समाजमें 'सम्पूर्ण साक्षरता' तभी संभव है, यदि शिक्षासे वंचित भूखे-नंगे लोगोंकी रोजी-रोटीके साथ जोड़ कर चलनेवाली एक ऐसी शिक्षण-पद्धतिका विकास कियाजाय, जिसमें लोगोंके परम्परागत ज्ञान और कौशलको मुख्य रूपसे लिया गया हो।

हमारे लिए अच्छा संयोग था कि उस समय तक **'मिथिला पेन्टिंग्स'** का व्यवसाय मात्र मधुबनीके पाँच-सात गाँवों तक सीमित था, जिसमें मात्र दो उच्च जातिकी महिलाएँ शामिलथीं। उन शिल्पियोंके घरोंमें मिथिला चित्रका परम्परागत उपयोग था और वे इसे 'धार्मिक चित्र' मानकर केवल सजावटी चित्रका उत्पादन कर रही थीं। सन् १९७४ में मेरी पत्नी श्रीमती शिवाने इस व्यवसायका फैलाव मिथिलाके अन्य क्षेत्रों तक करने और चित्रशैलीमें विविध उपयोगी सामग्रियोंके उत्पादनका सिलसिला शुरू किया। मैं इसे 'जीवन और शिक्षण'

के विषयके रूपमें विकसित करना चाहता था। इसके लिए शिक्षण-सामग्रियोंकी आवश्यकता थी।

लोकनायक जयप्रकाश नारायणके नेतृत्वमें संचालित 'सम्पूर्ण क्रान्ति' का लक्ष्य सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, नैतिक और राजनैतिक क्षेत्रोंमे सम्पूर्ण बदलाव था, किन्तु दुर्भाग्यवश उस महान आन्दोलन का मात्र राजनैतिक सत्ताके बदलाव तक आते-आते समापन हो गया। आन्दोलनकी इस निराशाजनक परिणतिसे आन्दोलनकारी साथियोंका जब मोहभंग हो गया, तो सभी सक्रिय मित्रोंने जहाँ-तहाँ भूमिसे जुड़ कर शोषित-दमित समुदायोंके बीच उन्नयनके कार्य प्रारम्भ किया। मैं भी नेपालसे विदा होकर दिल्लीके बेपनाह बाल-श्रमिकोंके बीच और फिर बिहारके गया, हजारीबाग जिलोंमे अमानवीय जीवन जी रहे समुदायों के बीच साक्षरता और चेतना-विकासके कार्योंमें जुट गया। यह सिलसिला सन् १९८१ तक चलता रहा।

इस पुस्तकका पहला खाका नवम्बर, १९८२ में उस समय तैयार हुआ, जब मैंने अन्ततः यह निश्चित कर लिया कि अगले बीस वर्षों तक कार्यरूपमें प्रयोग

करनेके बाद सन् २०००–२००५ ईस्वी तक एक ऐसे **ग्रामीण विश्वविद्यालय** की स्थापना की जाय, जो ग्राम्य हस्तशिल्प और लोककलाओं पर आधारित हो ; जहाँ साक्षरता (प्राथमिक) वर्गसे लेकर उच्च श्रेणी तक 'पढ़ाई और कमाई' साथ चले, और वे विद्यालय मूलतः ऐसे लोगों, स्त्रियों, श्रमिकों के लिए समर्पित हों, जिनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी निरक्षरता, निर्धनता और उपेक्षाके धुंधमें जीती आयी है। इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिए हमने सन् १९८१ में **भारती विकास मंच**की स्थापना **बरहेता** (दरभंगा) में की और इसके साथही मिथिला एवं गोदना चित्रशैलियोंमें विधिवत शिक्षण, फैशन वस्त्रोंके उत्पादन और महानगरोंमें विक्रीका सिलसिला शुरू हुआ। इस पुस्तककी सह-लेखिका सुश्री शशिबाला उस शिल्प-विद्यालयकी प्रथम छात्रा हैं।

यह एक महान आश्चर्यका विषय और **उपयोगी शिक्षा-पद्धति**के प्रति सरकारी उदासीनताका जीवंत उदाहरण है कि जिस पद्धतिमें प्रशिक्षित होकर, पिछले सत्रह-अठारह वर्षोंसे, मिथिलांचलकी हजारों बालिकाएँ-महिलाएँ वस्त्रादि सामग्रियों पर चित्रांकनके

द्वारा शिक्षाके संग अपनी आजीविका अर्जित कर रही हैं, साथ ही जिस शिक्षा-पद्धतिने सम्पूर्ण मिथिलांचलमें एक युगान्तरकारी परिवर्तनका सूत्रपात किया, उस पद्धतिकी अबतक कोई शिक्षण-सामग्री मुद्रित नहीं हो पायी। किसी लोकचित्रकी शिक्षण-सामग्रीके रूपमें यह पहली मुद्रित पुस्तक है। हम आशा करते हैं कि शीघ्र ही इस कड़ीकी अन्य पुस्तकोंका प्रकाशन होगा।

मिथिला चित्र सीखनेके अभिलाषी अब केवल मिथिलामें ही नहीं, बल्कि भारतके अनेक राज्यों, पड़ोसी देश नेपाल, सुदूर अमेरिका और यूरोपके कई देशोंमें भी हैं। इस वर्ष मई से जुलाई तक मैंने **इटली** के कई शहरोंमे घूम-घूमकर लगभग बीस शिक्षण-संस्थाओंमें मिथिला चित्रशैली पर व्याख्यान दिया और भूमि-चित्रण, भित्ति-चित्रण पर कार्यशालाएँ आयोजित की, जिसमे इटलीके अलावा इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, चीन और हंगरीके कला-प्रेमियोंने भाग लिया। इसके अलावा जेनोवा और फ्लोरेंसमें मिथिला चित्र एवं वस्त्रोंकी प्रदर्शनियाँ आयोजित की। समाचार माध्यमों और दर्शकोंने इसकी प्रशंसा 'ऐतिहासिक दिग्दर्शन' कह कर की।

आजकल छपाईके कामको विज्ञानने जादुई और दिव्य बना दिया है, किन्तु सुविधा और सुन्दरताकी इस दौड़में लाखों हाथ बेकार हो गए हैं। इस मदमें यदि रचनात्मक पहल हों तो विज्ञानकी इस 'कामकाजी विभीषिका' को 'स्वर्णिम उपादेयता' में भी बदला जा सकता है। मेरा मानना है कि छपाईके क्षेत्रमें हाथके काम काफी बढ़ सकते हैं। यह पुस्तक इसका एक उदाहरण है। इससे पूर्व सन् १९९५में मैंने बिहार सरकार (शिक्षा विभाग) के लिए 'लोकगीतसे शिक्षा' विषय पर '**माछ-भात**' पुस्तककी रचना की थी, जिसका मुद्रण हस्तलिखित अक्षरोंमे ही हुआ। ... आजकल कम्प्यूटरसे कम्पोज करवाया जाता है और इस कामके लिए प्रति पृष्ठ साठ रुपये लगते हैं। यदि यही कम्पोजिंग हस्तलिपिमें हों तो हजारों युवकोंको, जिनके अक्षर साफ और सुन्दर होते हैं, काम मिल जायेंगे। नव साक्षरों की या बालवर्गकी पुस्तकें यदि इस रूपमें छपें तो पढ़ाई-लिखाईमें छात्रोंकी अभिरुचि काफी बढ़ जाएगी और इससे हिन्दी भाषाकी भी सेवा हो जाएगी।

इत्यलम् !

बरहेता,
देवोत्थान एकादशी,
१३ नवम्बर, १९९९ ई०

विनीत –
विद्वज्जन-पद-रेणु
कृष्ण कुमार कश्यप

विनती

मैथिलीमें एक कहावत है, "**ऐसन पोथी पुत्ता पढ़े, पाँच जना के हंडी चढ़े,**" अर्थात पुत्ता (बेटेको) **ऐसी** पोथी (पुस्तक) **पढ़ाना चाहिए, जिससे** 'पाँच जना' या **परिवारके** लिए 'हंडी' (भातका बासन) चुल्हे पर चढ़ सके; परिवारका **भरन-पोषण हो सके**। यह उस समय की कहावत है, जब पढ़ाई और कमाई के लिए केवल बेटोंको समाजमें अनुमति थी; बेटियों को पढ़ाई और कमाईकी अनुमति नहीं थी। यह बात बहुत पुरानी नहीं है। महज बीस-बाइस वर्ष पहले तक मिथिला समाजमें यही धारा चल रहीथी। आज ऐसी स्थिति नहीं है। अब पढ़ाई के साथ जुड़ा सबसे बड़ा प्रश्न जो अनुत्तरित रह गया है, वह है रोजगार का।

संत विनोबाने "जीवन और शिक्षण" का सिद्धान्त दिया। श्री कश्यपजी ने इस सिद्धान्त को अपनी बुद्धि से "**शिल्प पर आधारित कमाई और पढ़ाई**" की एक पद्धतिके रूपमें यहाँ सन् १९७६ई० में लागू किया। कश्यपजीने **परम्परागत कशीदा** और **मिथिला चित्र**को विषयके रूप मे लिया। उस समय मिथिला चित्र में किसी तरह की लिखित सामग्री नहीं थी, जिसके आधार पर पढ़ाई होती, किन्तु अपनी वर्षों की तैयारी के बाद उन्होंने "**मिथिला चित्र शिक्षा**" का एक नमूना तैयार रखा था, जिसके आधार पर वर्ग प्रारंभ हुआ। मुझे

बहुत प्रसन्नता है कि भारती विकास मंच के इस शिल्प - विद्यालय की प्रथम छात्रा होने के कारण मैंने संस्थापक के साथ मिलकर पुस्तकें तैयार करने और दो दर्जन से अधिक शिल्प -विद्यालयोंके गठन, संचालन और सरकारि-गैरसरकारी क्षेत्रों में लगातार अनुसंधान में संलग्न रह सकी ।

हमारा मानना है कि पाठ्य-पुस्तकें मुख्यतः शिक्षकोंके लिए होनी चाहिए । हालाँकि पुस्तक में हमने अलग से पाठ -निर्देश नहीं दिए हैं, किन्तु छात्रोंको चाहिए कि पाठके अन्तर्गत आए प्रारूपोंका अच्छी तरह से अभ्यास करने के बाद ही आगे के पाठ में प्रवेश करें। इस पुस्तक की पाठ्-योजना एक -दूसरे से इस प्रकार निबद्ध हैं कि यदि पिछले पाठका ठीक से अभ्यास नहीं किया गया हो तो अगले पाठकी अच्छी तैयारी कठिन होगी।

किसी लोकचित्र विषय पर पहली बार हमने मुद्रित शिक्षण-सामग्री तैयार की है । हालाँकि इस पुस्तक के आधार पर पिछले १६-१८ वर्षों में हजारों बालिकाओं को सिखाया जा-चुका है, फिर भी इसमें अनेको त्रुटियाँ होंगी। आपके सुझाव हमारे लिए पथ-प्रदर्शक होंगे ।

भारती विकास मंच
बरहेता ।
२० नवम्बर , १९९९ ई०

प्रार्थी —
शशिबाला

ओनामासीधं

पाठ - १

श्रीगणेशजीके इस मंत्र — ओनामासीधं का शुद्ध रूप ओं नमः सिद्धं है । परम्परागत शिक्षा- पद्धतिमें, शिशुओंको अक्षर- ज्ञान करानेके प्रथम चरणमें, श्रीगणेशजीके इस मंत्रके साथ गुरुजी भूमि पर उनके एक प्रमुख आयुध 'अंकुश' का चित्रण करते हैं। अबोध शिशु जैसे- तैसे, अपने ढंगसे, तरह- तरहके अंकुश बनाते हुए, तोतली बोलीमें ओं नमः सिद्धंको ओनामासीधं कहकर बोलते जाते हैं और इस प्रकार शिशुके विद्याभ्यासका श्रीगणेश होता है ।

श्रीगणेशजीके अंकुशके कई रूप हैं —

परम्परागत हिन्दू परिवारोंका मत है कि किसी कार्यके प्रारम्भमें यदि श्रीगणेशजीकी पूजा की जाय तो उस कार्यमें कभी कोई बाधा नहीं आती है। भगवान शिव और भगवती उमाके पुत्र श्रीगणेशजीको इसी कारण **विघ्नविनाशक** कहते हैं।

मिथिला लोकचित्र कथाओं पर आधारित होते हैं। इन कथाओंके मुख्य स्रोत दंतकथाएँ, लोकगाथाएँ, धर्म-पुराण, परम्परागत विधि एवं संस्कार आदि रहे हैं। इस प्रथम पाठमें आप श्रीगणेशजीसे सम्बंधित एक दंतकथाको जानें।

श्रीगणेशजीके जन्म और लीलाओंकी कथाएँ ग्रामीण दंतकथाओंके अतिरिक्त श्रीशिव पुराण, स्कन्द पुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण आदि ग्रन्थोंमें सविस्तार वर्णित हैं। गणेश पुराणमें श्रीगणेशजीको जगतकी सृष्टि, संहार और पालनके एकमात्र कर्त्ताके रूपमें दर्शाया गया है।

मिथिलाकी एक दंतकथाके अनुसार, घरखर्चेकी तंगीको लेकर शिव और पार्वतीमें एक बार बहुत कहासुनी हो गई। तड़क-भड़क दिखला कर भोलाबाबा तो हर बार की तरह कहीं चले गए और पार्वती मैया कुटियाके भीतर उदास बैठी, देहसे मैल छुड़ाती रही। गुमसुम बैठी पार्वतीको क्या सूझा कि उस मैलसे एक मूर्ति बनाने लगी। शिव और पार्वतीके विवाह हुए वर्षों बीत गए थे फिर भी कोई सन्तान नहीं होनेके कारण पार्वतीको उस मूर्त्तिसे बच्चेकी तरह मोह हो गया। उन्होंने सोचा कि क्यों न इसी मूर्त्तिमें प्राण-प्रतिष्ठा करके इसे अपना पुत्र बना लिया जाय। यही सोचकर पार्वतीजी ने उस मूर्त्तिको दरबाजे पर ही एक तरफ टिका कर रख दिया और स्नानकी तैयारी करने लगी। तभी भाँगके नशेमें धुत्त भोलाबाबा भी आ गए। उनके डगमगाते पैरोंकी ठोकरसे मूर्त्तिकी गरदन टूटकर कहीं लुढ़क गई। यह देखकर पार्वतीमैया दहाड़ें मारकर रोने लगीं। उन्हें इस प्रकार रोते देखकर शिवजीने अपने किसी गणको यह आदेश देकर भेजा कि

पहली नजरमें जो कोई दीख जाय, उसकी गरदन काटकर ले आओ। उस गणने सर्वप्रथम हाथीके एक नवजात बच्चेको देखा और उसकी गरदन काटकर रुधिर चूता गजमस्तक शिवको लाकर दिया। शिवने उस गजमस्तकको मूर्त्तिकी धड़से जोड़कर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कर दी। प्राण-प्रतिष्ठा होते ही वह मूर्त्ति नवजात शिशुकी तरह चेहों-चेहोंकर रोने लगा, मैया पार्वतीकी छातीसे दूधकी धारा बहने लगी और चारों तरफ मंगल-ध्वनिसे कैलाश गूँज उठा। गजमस्तकवाले उस शिशुका नाम शिवजीने गजानन रखा।

गणेशजी दो भाई थे। छः मुखवाले स्कन्द गणेशजीसे बड़े थे। गणेशजीकी दो पत्नियाँ थीं– ऋद्धि-सिद्धि एवं बुद्धि। इन दो पत्नियोंसे उन्हें दो पुत्र प्राप्त हुए — क्षेम एवं लाभ।

एक बार देवताओंमें इस बातके लिए भारी विवाद उठ खड़ा हुआ कि सबसे पहले किसकी पूजा हो। अन्तमें सभी देवता शिवजीके पास फैसला

कराने पहुँचे। शिवजीने देवताओंकी बातें सुनी और उन्हें अपने-अपने वाहनो पर ब्रह्माण्डकी परिक्रमा करनेको कहा। इस व्यवस्थाके अनुसार यह तय हुआ कि जो देवता विश्वकी तीन परिक्रमा करके सबसे पहले महादेवके पास पहुँच जायेंगे, उन्हींकी पूजा सबसे पहले की जाएगी। देवताओंको यह शर्त बहुत पसंद आई। भोलाबाबाके संकेत करते ही सभी देवता अपने वाहनो पर सवार होकर दौड़में कूद पड़े, किन्तु गणेशजीका वाहन तो चूहा है। चूहा बहुत तेजीसे दौड़ नहीं सकता। इसीलिए गणेशजी उस दौड़के लिए तो नहीं निकले, किन्तु अपनी बुद्धिसे उन्होंने एक उपाय निकाला। उन्होंने सोचा कि माता-पिताकी कृपासे ही कोई देवता या मनुष्य संसारका मुँह देखता है, अर्थात माता-पिता संसारसे भी बड़े हैं। यही विचारकर गणेशजीने चूहे पर बैठ कर माता-पिताको प्रणाम किया और तीन बार उनकी परिक्रमा करके उनके चरणोंके पास बैठ गए। शिवजी गणेशजीकी बुद्धिमानी पर मुग्ध हो मुस्कुराने लगे। कुछ समय बाद सभी देवता

बारी-बारीसे शिवजीके पास पहुँचने लगे किन्तु तब तक तो प्रतियोगिताका फैसला हो चुका था। गणेशजी प्रथम स्थान पर रहे। उस दिनसे श्रीगणेशजीकी पूजा सबसे पहले की जाती है।

श्रीगणेशजीका सम्पूर्ण शरीर मनुष्यके आकारका है, किन्तु मुँहकी आकृति हाथीकी है। धर्मशास्त्रोंमें अनेक प्रकारसे गणेशजीके विग्रहका (स्वरूपका) वर्णन है। कहीं वे दो भुजाओंवाले हैं, कहीं चार भुजावाले, कहीं छः भुजाओंवाले, कहीं आठ भुजाओंवाले तो कहीं सोलह भुजाओंवाले हैं। उनके शरीरका रंग कहीं बालसूर्यके समान अरूण रंगका तो कहीं चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले दिखाया गया है। उनके सर्वाङ्ग मोतियों और रत्नोके आभूषणसे सुशोभित हैं। वे नागका यज्ञोपवित (जनेऊ), लालवस्त्र और पीला दुपट्टा धारण करते हैं। उनके भाल पर चन्द्रमा हैं और वे अपने हाथोंमें परशु, कमल, अंकुश और लड्डू धारण किए होते हैं। '**एकदन्त**' (एक दाँतवाले)

नामसे विख्यात श्रीगणेशजी सबोंकी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाले और आनन्द-प्रदाता हैं।

इस प्रथम पाठका प्रारम्भ श्रीगणेशके अंकुशसे हुआ है। अंकुश विद्या-बुद्धि, साहस, सफलता, शांति और शक्तिके प्रतीक हैं। इस प्रकार, एक तरहसे, अंकुश श्रीगणेशजीके प्रतीक हैं।

प्रथम पृष्ठ पर दिए गए अंकुशके पाँच रूपोंका अभ्यास सर्वप्रथम भूमि पर करें। मिथिला चित्रशैलीमें शिक्षणका प्रारम्भ भूमि से होता है। इन अंकुशोंमे रेखागणितके पाँच ऐसे मूल चिन्ह मिले हुए हैं, जिन चिन्होंसे सभी प्रकारके चित्र और अक्षर बन सकते हैं। ये चिन्ह हैं ○ ◡ — | \

इन चिन्होंके प्रयोग अगले पाठोंमें दिखाए गए हैं।

शुभमस्तु !

रेखायतन

पाठ - २

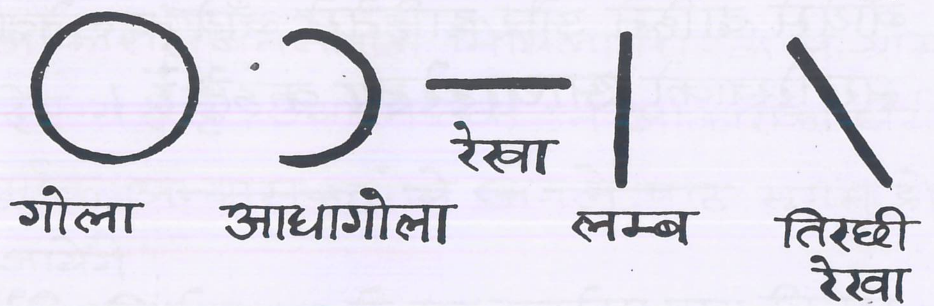
रेखायतनका अर्थ होता है, रेखाओंका संसार।

संसारकी सभी वस्तुएँ — चाहे वे प्रकृति द्वारा निर्मित हों अथवा मनुष्यके द्वारा — जो कुछ भी हम देखते हैं, उनका कोई न कोई आकार अवश्य होता है। यदि अपने आसपास फैली चीजोंको गौरसे देखें, तो आपको पता चलेगा कि किसी वस्तुका आकार लम्बा है, किसीका चौड़ा, किसीका गोला तो किसीका तिकोना या चौकोर।

आपने आकाशमें उगनेवाले सूर्य और चन्द्रमाको अवश्य देखा होगा। सूर्य और चन्द्रमा गोलाकार हैं। लेकिन चाँदका आकार बदलता रहता है — कभी आधे गोल तो कभी उससे भी कम। आप जहाँ तक नजर डालें, सभी वस्तुओंके आकार हैं। आपका घर,

टेबल, कुर्सी, कलम, पुस्तक, घड़ी, छड़ी — सभी कुछ एक आकारसे जानी जाती हैं। ये आकार कैसे बनते हैं? यदि आप उन वस्तुओंके चित्र बनाना चाहें तो कैसे बनायेंगे? यदि आप चाँद बनाना चाहें तो आसानीसे एक गोला बनाकर चाँद बना सकते हैं। इसी तरह यदि एक टेबल बनाना हो तो कुछेक खड़ी-पड़ी रेखाओंसे आप टेबल बनानेका प्रयास करेंगे।

रेखाओं और उनसे बननेवाले आकारोंका अध्ययन **रेखागणितके** विषय हैं। यहाँ हम केवल पाँच चिन्होंका अभ्यास करेंगे, जिनसे किसीभी शैलीके चित्र और किसी लिपिके अक्षर बनाये जा सकते हैं। ये चिन्ह इस प्रकार हैं —



आगेके पाठोंमें आप वृत्त (गोला) और अधगोलोंका अध्ययन करेंगे। इससे पूर्व आइयें, रेखाओंके कुछ प्रयोग करें। इस क्रममें सबसे पहले **सरलरेखा** ——

सीधी रेखा या लकीरोंको सरलरेखा कहतेहैं।

टेढ़ी- मेढ़ी रेखाको **वक्ररेखा**

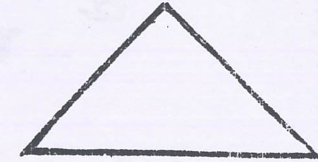
और खड़ी रेखाको **लम्ब** कहते हैं॥

बाँयेसे दाहिने और दाहिनेसे बाँये चलनेवाली सरलरेखाको **आधाररेखा** कहते हैं।

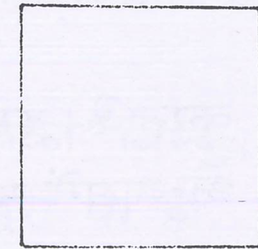
किसी आधाररेखा पर दो तरफसे **तिरछीरेखाएँ**

डालनसे जो तिकोना आकार बनता है, उसे

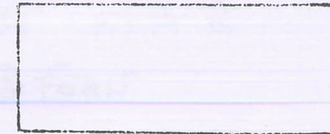
त्रिभुज कहते हैं -



चार समान रेखाओंसे घिरे क्षेत्रको **वर्ग** कहते हैं-



दो छोटी और दो बड़ी रेखाओंसे घिरे क्षेत्रको **आयत** कहते हैं.-

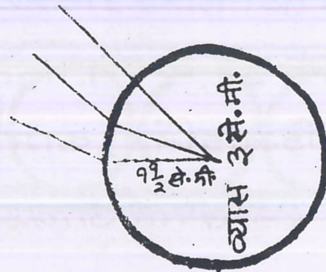


इस पाठमें आपने सरलरेखा, वक्ररेखा, तिरछी रेखाएँ, त्रिभुज, वर्ग और आयतके बारेमें जाना। आगेके पाठोंमे इन आकारोंसे बननेवाले मिथिला चित्रके अभ्यास दिए गए हैं। ज्यामितिके इन आकारोंका धैर्य-पूर्वक अभ्यासकरनेसे अगले पाठ सुगम हो जायेंगे।

गोलोंके आकारमें एकरूपताके लिए **पीर विधि**का सहारा लेना चाहिए। पीर विधिके अन्तर्गत तीन तरहसे वृत्त बनाए जाते हैं। इस विधिका उद्देश्य यह है कि लोकचित्रके निर्माणमें यथासंभव कम-से कम औजारका उपयोग हो।

पोर विधिके **पहले तरीकेमें**, पहले अनुमान से एक केन्द्र-बिन्दु निश्चित करते हैं। इसके बाद, आकारके हिसाबसे, **तर्जनी** उंगलीकी नोकको केन्द्र-बिन्दुसे सटाकर, जरूरतके अनुसार, उस उंगलीके पहले **पोर**, दूसरे या तीसरे पोरके पास हल्का बिन्दु लगाते हैं, और बार-बार इस तरह करके फिर रंग या पेन्सिलसे वृत्तकी परिधिको उगा लेते हैं।

पोर विधिके **दूसरे तरीकेमें**, उँगलीके स्थान पर किसी सींकका उपयोग किया जाता है।



पिछले पृष्ठ पर एक वृत्तका बनना दिखाया गया है, जिसका व्यास तीन सेन्टीमीटर है। तीन. से.मी. के उस वृत्तको बनानेके लिए उतनी ही बड़ी सींकका एक टुकड़ा लेते हैं और ठीक बीचसे उसे मोड़कर बीचके उस केन्द्रको वृत्तके लिए निश्चित किए गए केन्द्र-बिन्दु पर रखते हैं। ऐसा करनेसे केन्द्र-बिन्दुके दो तरफ सींकके डेढ़ से.मी. के छोर बन गए। अब दोनो छोर पर बिन्दु लगाकर धीरे-धीरे सींकको सावधानीसे केन्द्र-बिन्दुसे सटाए हुए, सींकके दोनो छोर पर हल्के बिन्दु लगाते जाएँ। जब हर तरफ बिन्दु सघन हो जाय तो उन्हें रंग या पेन्सिलसे जगाकर गोला या वृत्त बना लें।

पोर विधिके **तीसरे तरीकेमें**, उँगली या सींकके स्थान पर मापवाली पटरीका इस्तेमाल करते हैं। इस विधिमें भी सींककी तरह ही केन्द्र-बिन्दुके दोनो ओर बिंदी लगाकर वृत्त बनाते हैं।

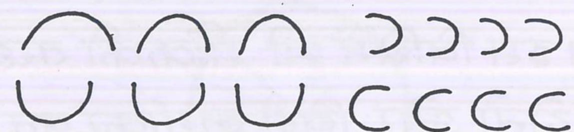
आधागोला या अर्द्धवृत्त

पाठ-२(ख)

जैसे एक गोल रोटीके दो टुकड़े कर देने पर रोटीके दो टुकड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार एक गोलेको दो भागोंमें बाँट देने पर दो **अधगोले** या **अर्द्धवृत्त** बन जाते हैं।



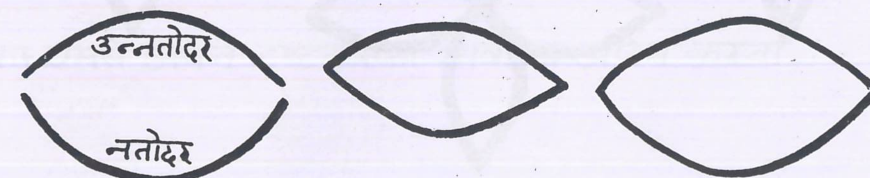
मिथिला चित्रशैलीमें अधगोलोंसे बने अलंकरण (सजावट)के बहुत तरहसे उपयोग होते हैं। इस प्रकारके अधगोल माप-जोखसे नहीं बल्कि निरन्तर अभ्याससे सीखे जाते हैं।



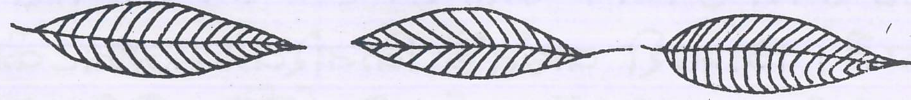
अर्द्धवृत्तसे बननेवाले अलंकरणोका कई रूपमें उपयोग होता है। एक रूप **किनारी** का है। किनारी कहते हैं किनारेकी सजावटको। आगेके अध्यायमें आपको **भिटकी**के बारेमें बताया जायगा। यह किनारी भी असलमें एक तरहकी भिटकी ही है। किसी रेखाके सहारे या कभी किसी वृत्तकी परिधिके साथ चलते हुए, नाखूनके आकारकी ये किनारी चित्रको समृद्ध बनानेवाली सजावट हैं।



दूसरा रूप **नतोदर** और **उन्नतोदर** है। जिस किनारीकी पेटी नत या नीचे होती है, उसे **नतोदर** और जिसकी पेटी उन्नत या ऊँची रहती है, **उसे उन्नतोदर** कहते हैं। नतोदर और उन्नतोदर मिलाकर आँख बनती है।

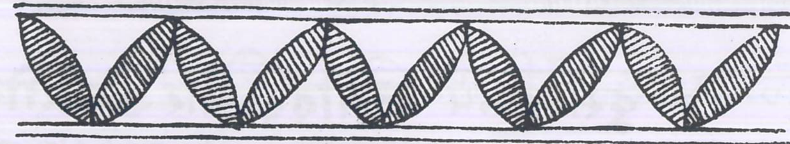


अधगोलेका एक रूप नावके आकारका है। इससे पत्ते बनते हैं।

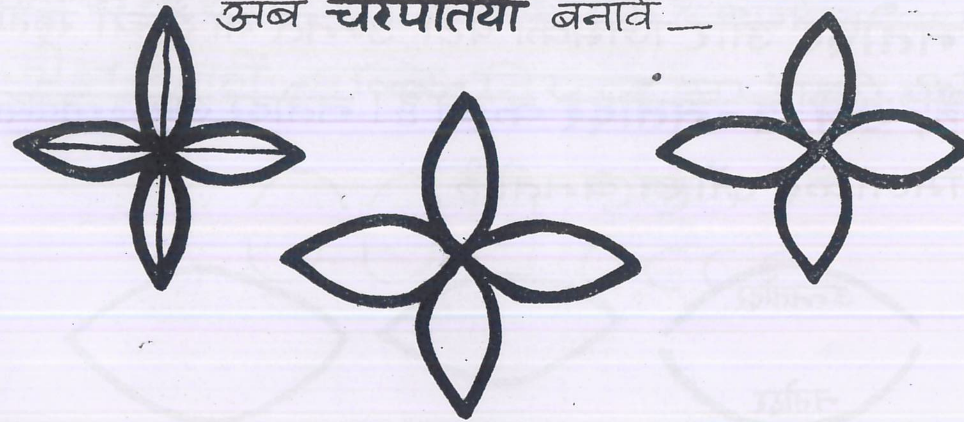


अधगोलेसे कई प्रकारके सजावट किए जाते हैं। यह कोस (कोष) है -

कोसको सटा-सटा कर रखनेसे **छर्राकोस** बनते हैं, जिसका उपयोग किनारेकी सजावट या **कोरके** रूपमें किया जाता है।



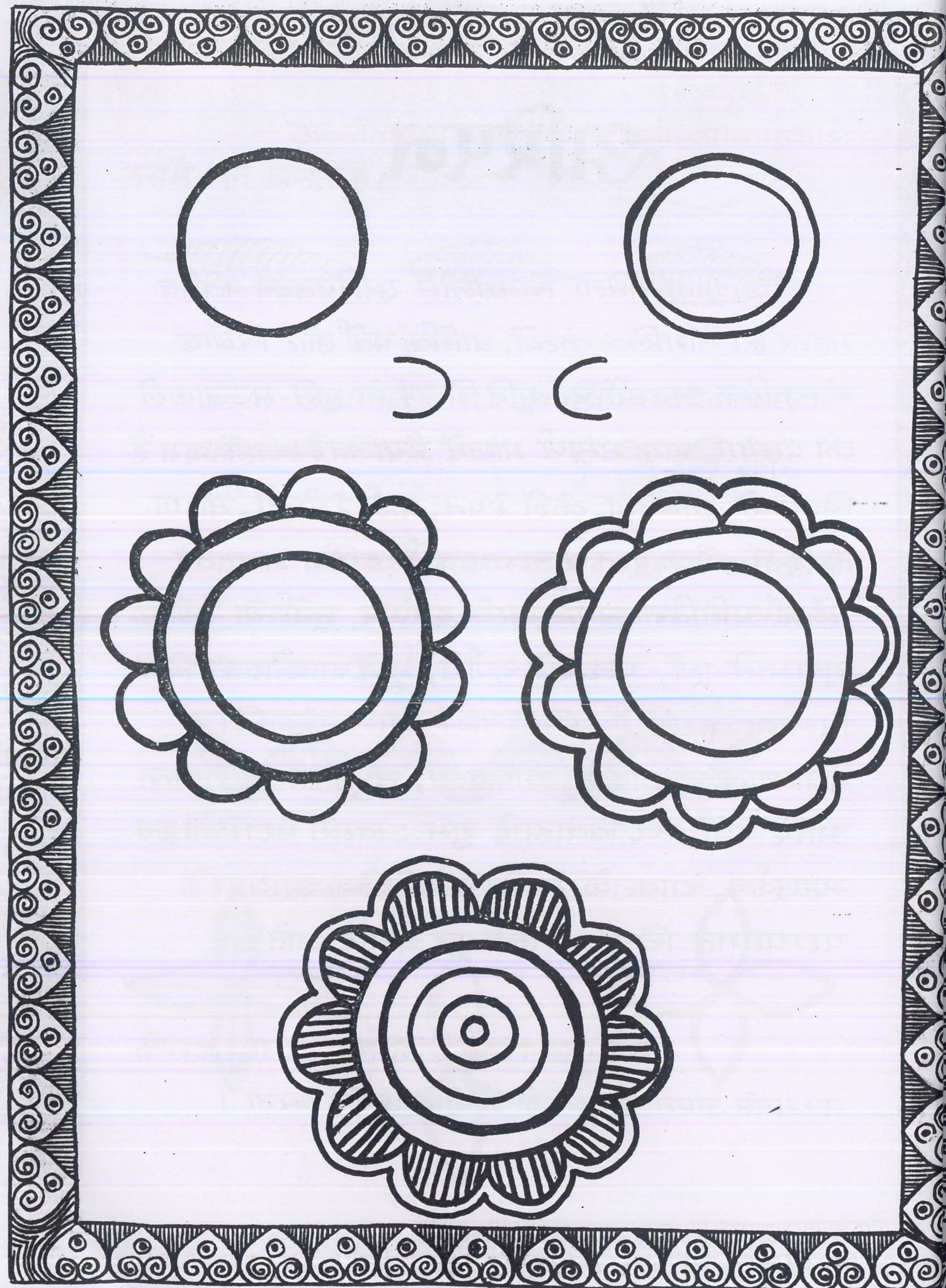
अब **चरपतिया** बनावें —

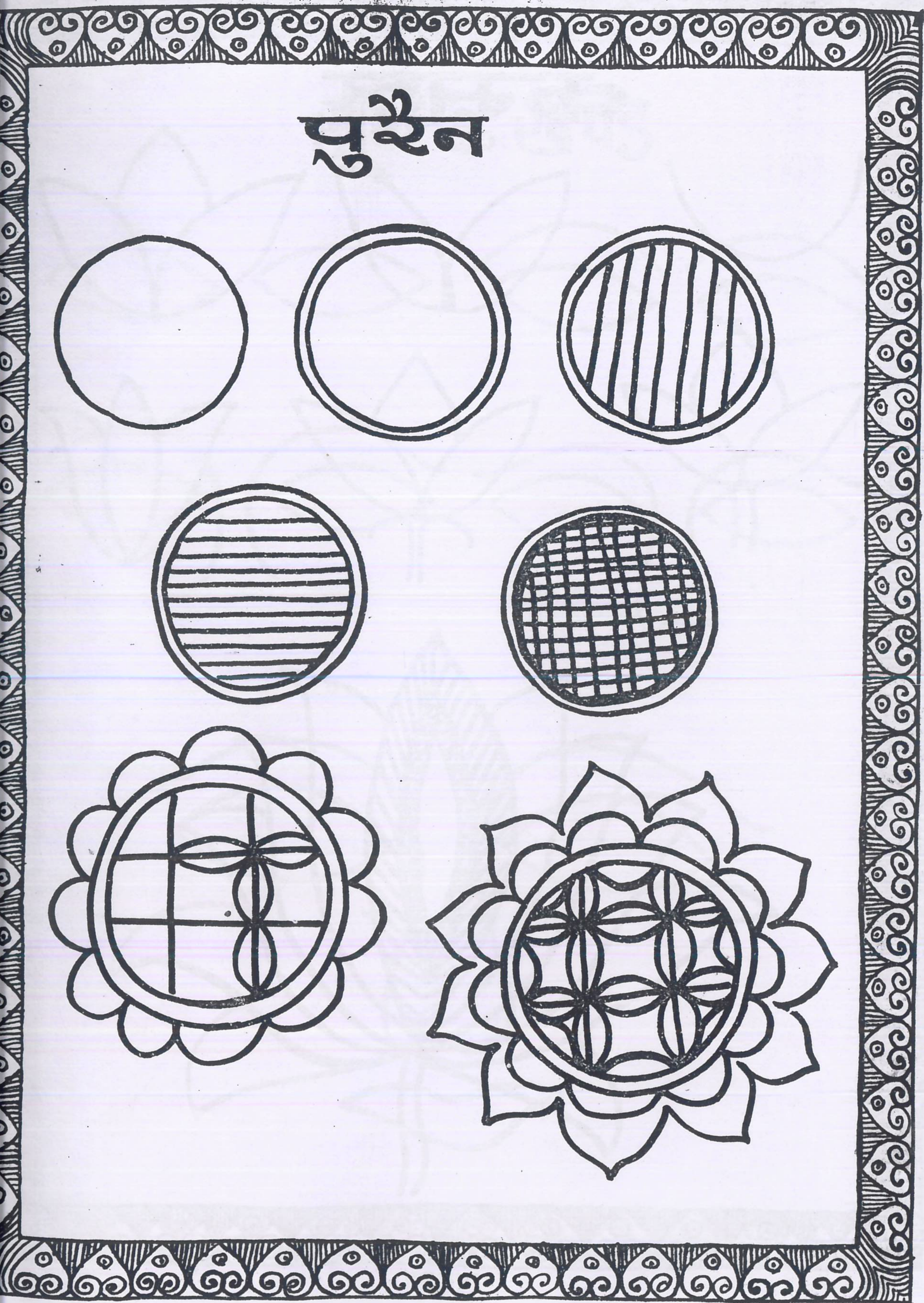


अरिपन

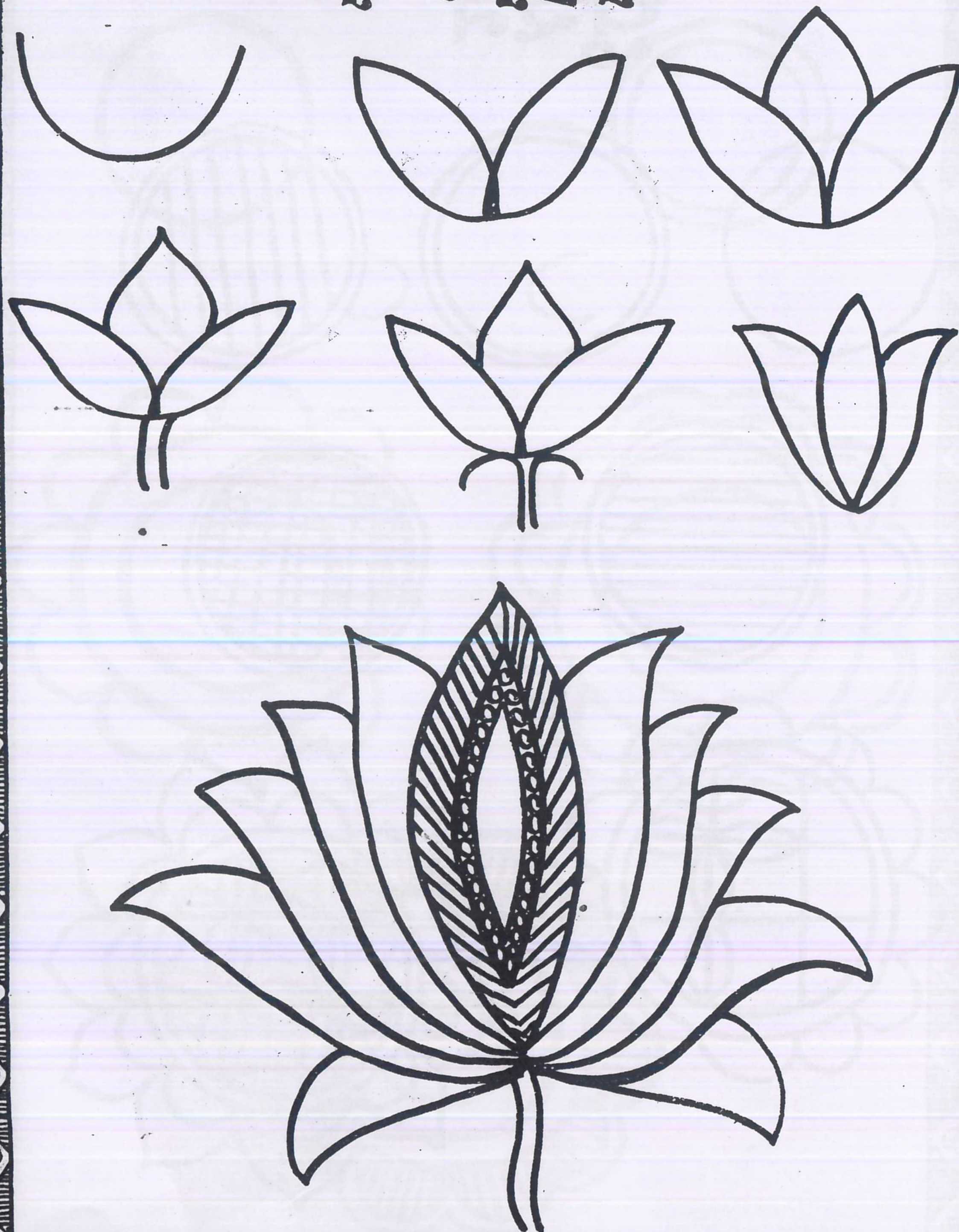
मिथिला चित्रशैलीमें **अरिपनका** विशेष महत्व है। मांगलिक कृत्यों, धार्मिक पर्वों और विशिष्ट सांस्कृतिक अवसरों पर भूमि चित्रण या भूमि-सज्जाकरने की परम्परा प्रायः सम्पूर्ण भारतमें प्रचलित है। कहीं इस चित्रणको अल्पना, कहीं ऐपन, कहीं रंगोली, मांडण तो कहीं चौक पूरन कहा जाता है। दक्षिण भारतकी स्त्रियाँ प्रतिदिन अपने घरके द्वार पर, सूर्योदय और सूर्यास्तसे पूर्व, पत्थरके चूर्णसे, भूमि पर कोलमका निर्माण करती हैं। मिथिलामें गाभा संक्रान्ति, देवोत्थान एकादशी, दीपावली, भातृद्वितिया, नवान्न आदि पर्वों एवं, विवाहादि शुभ अवसरों पर स्त्रियों द्वारा श्रद्धापूर्वक, चावलके रंगसे, ज्यामितिक आकारके परम्परागत चित्र — अरिपन बनाए जाते हैं।

अरिपनका अर्थ है अर्पण करना — कलाके माध्यमसे अपने इष्टदवको भावोंका अर्पण करना।

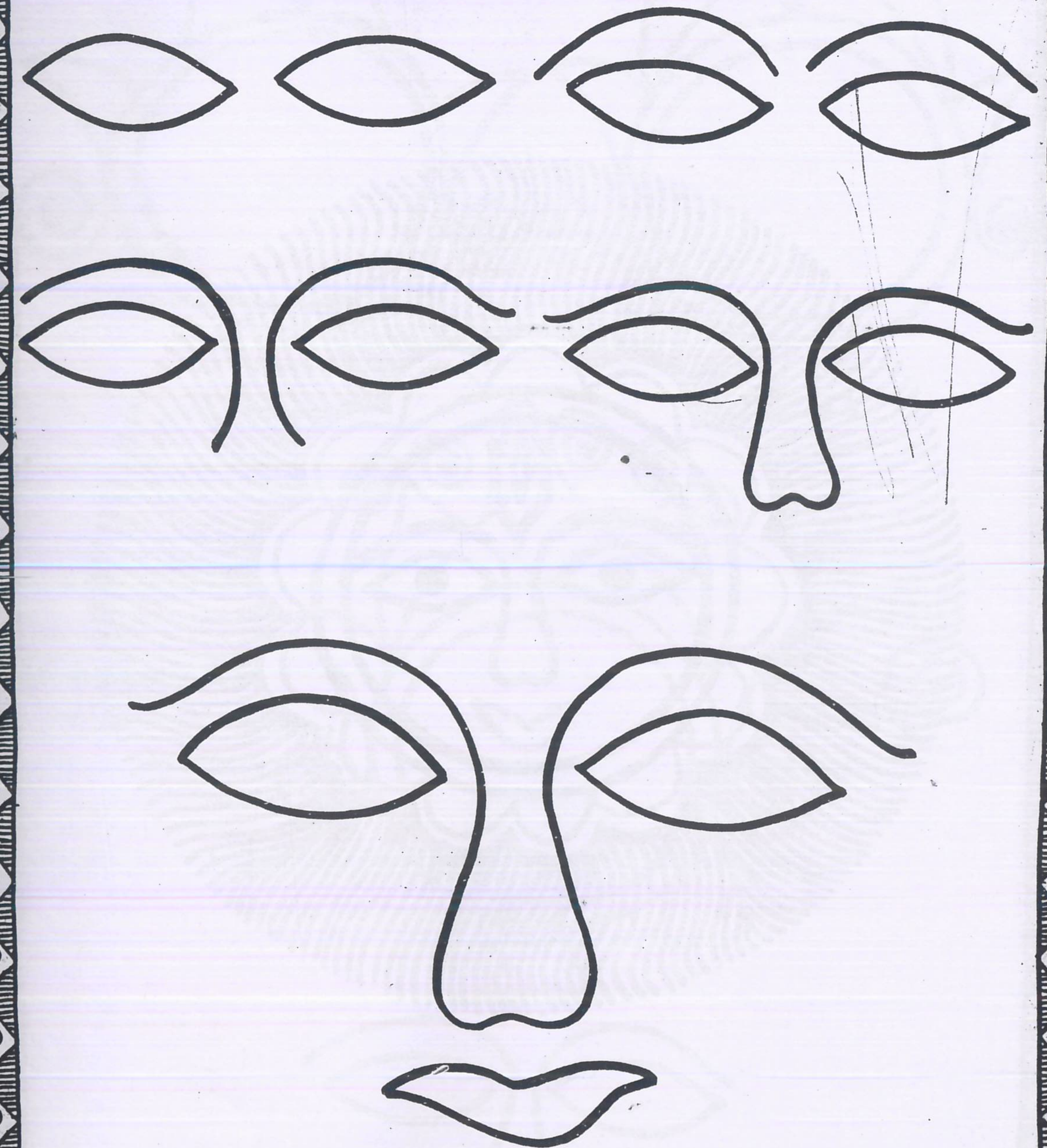



पुरैन

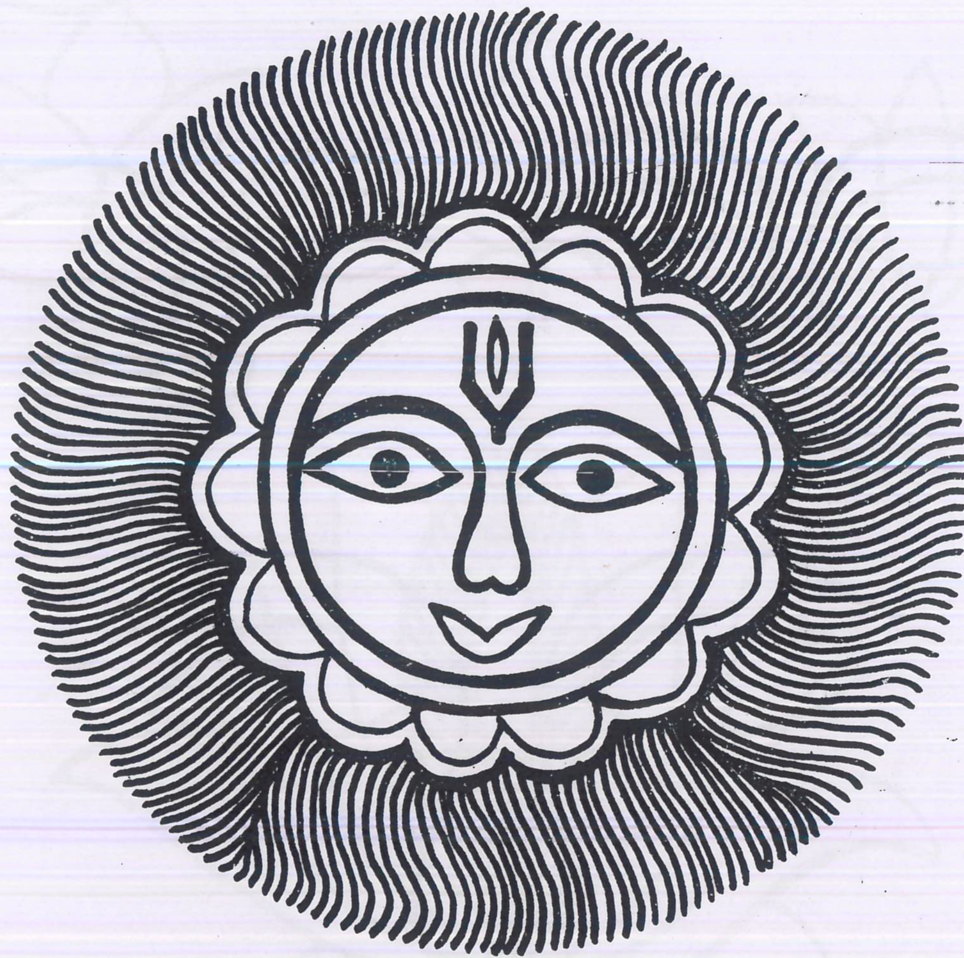
कमल

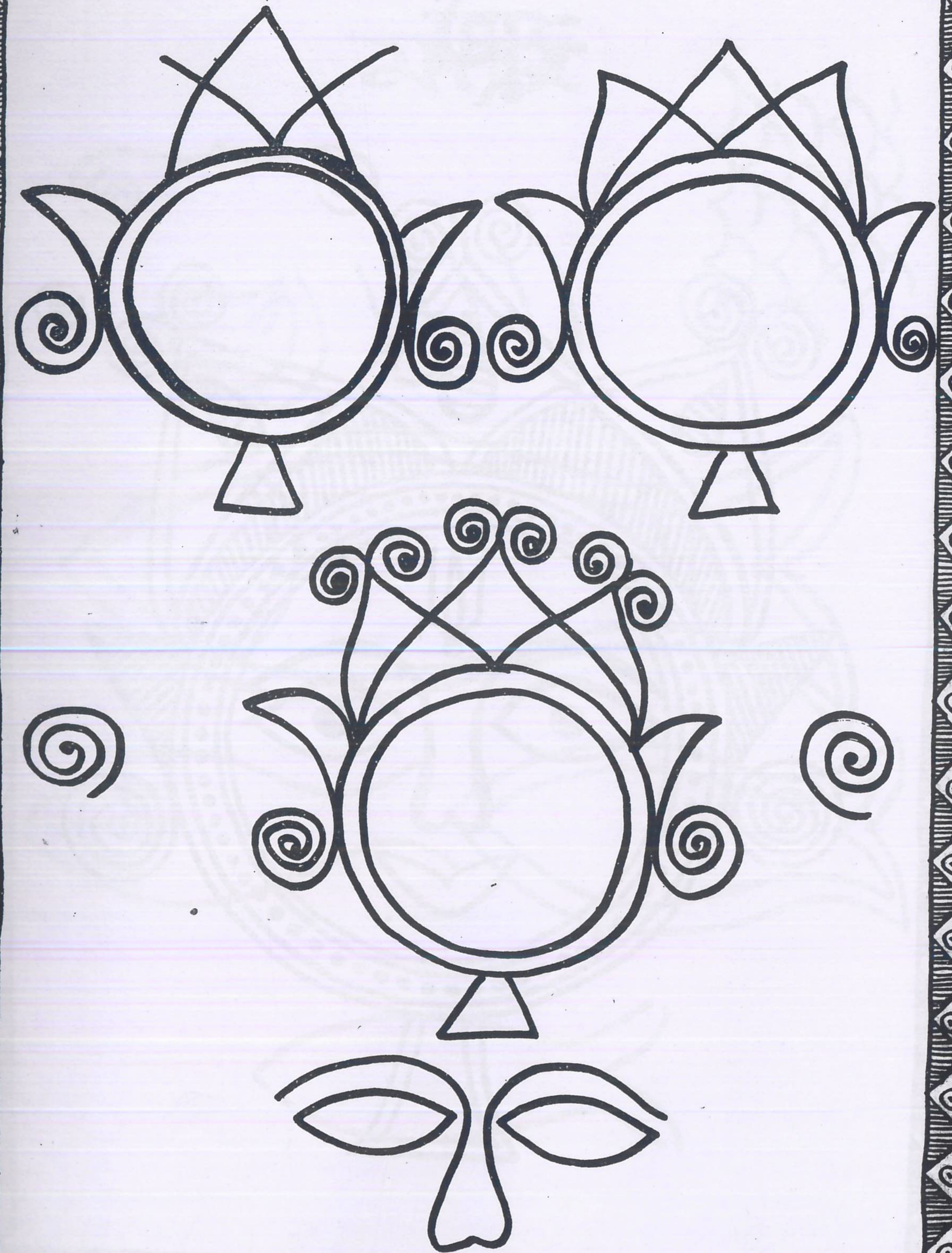


सूर्य के खण्ड



सूर्य

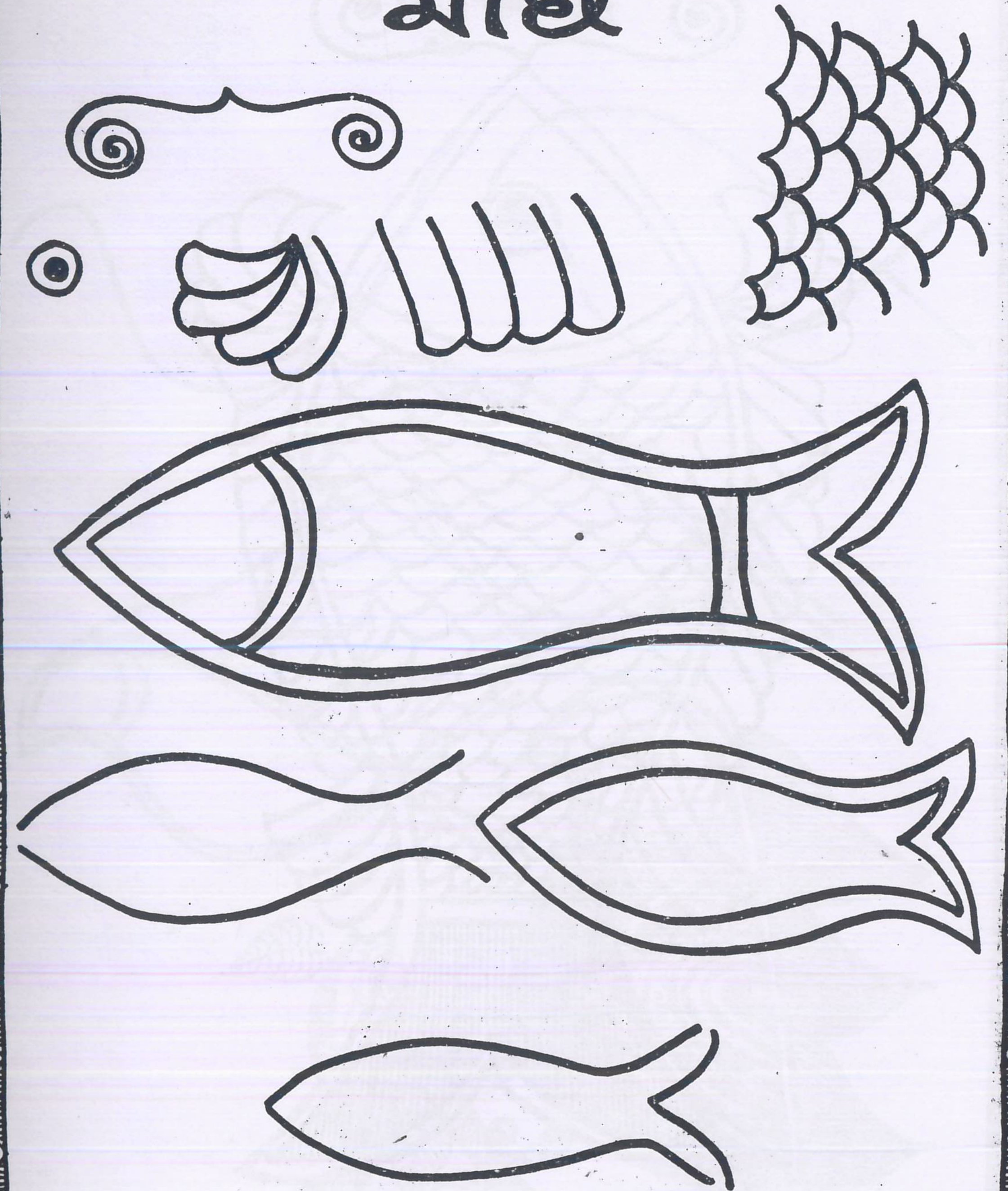


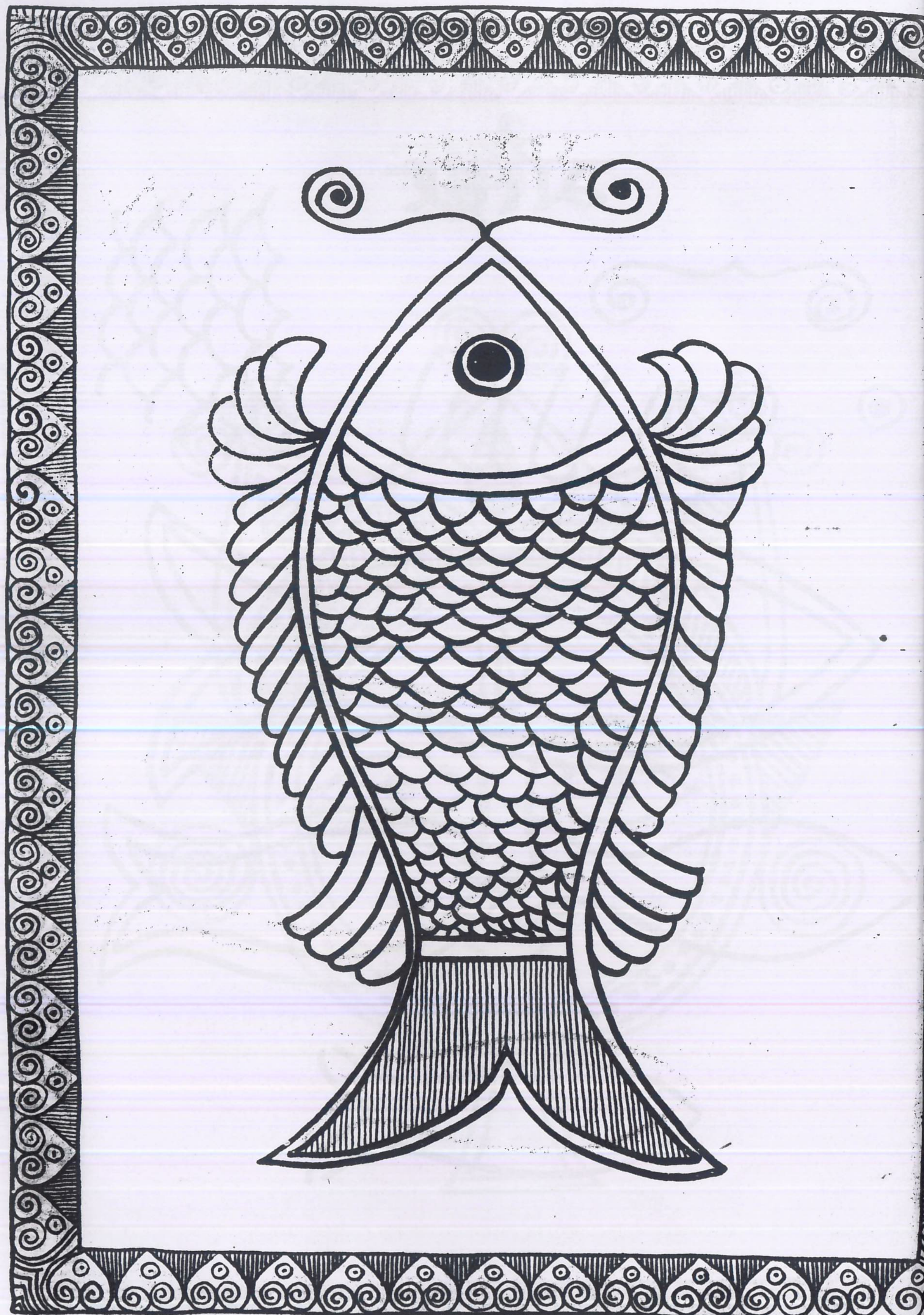


सूर्य



माछ

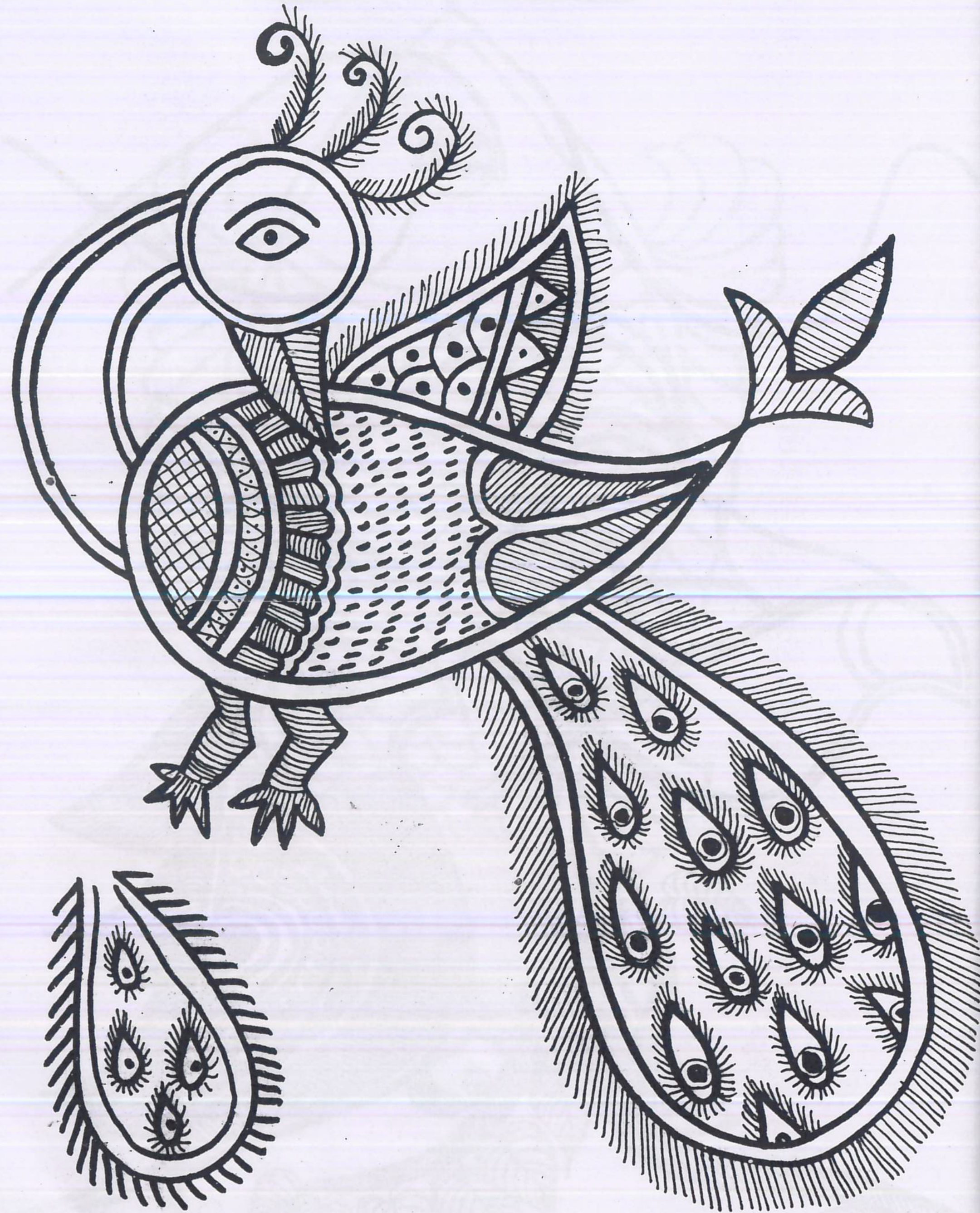




सुग्गा



मयूर



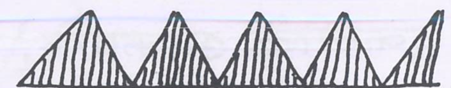
कचनी

पाठ - ३

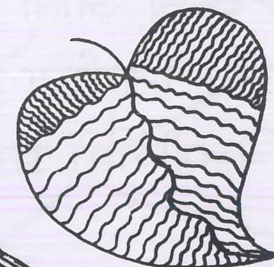
कचनीका महत्व मिथिला चित्रशैलीमें वैसाहीहै जैसा कि शरीरमें प्राणका। कचनीके कारण चित्र प्राणवन्त लगते हैं।

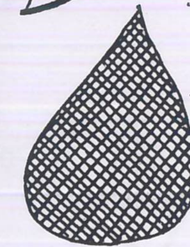
कचनीका अर्थ होता है कचना; महीन- महीन काटना।











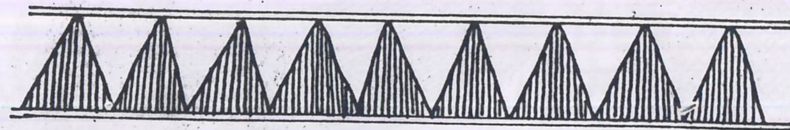


झिटकी

पाठ - ४

मिथिलाके गाँवोंमें आजसे पच्चीस-तीस वर्ष पहले तक, मिट्टीके पके बर्त्तनोंमें खाना पकाए जाते थे। पानीके घड़े, ढकना-सरबा, दीया, धूपदानी और घरेलू उपयोगके कई पात्र मिट्टीके बने होते थे। अब उनकी जगह स्टीलके बर्त्तनोने ले ली है।

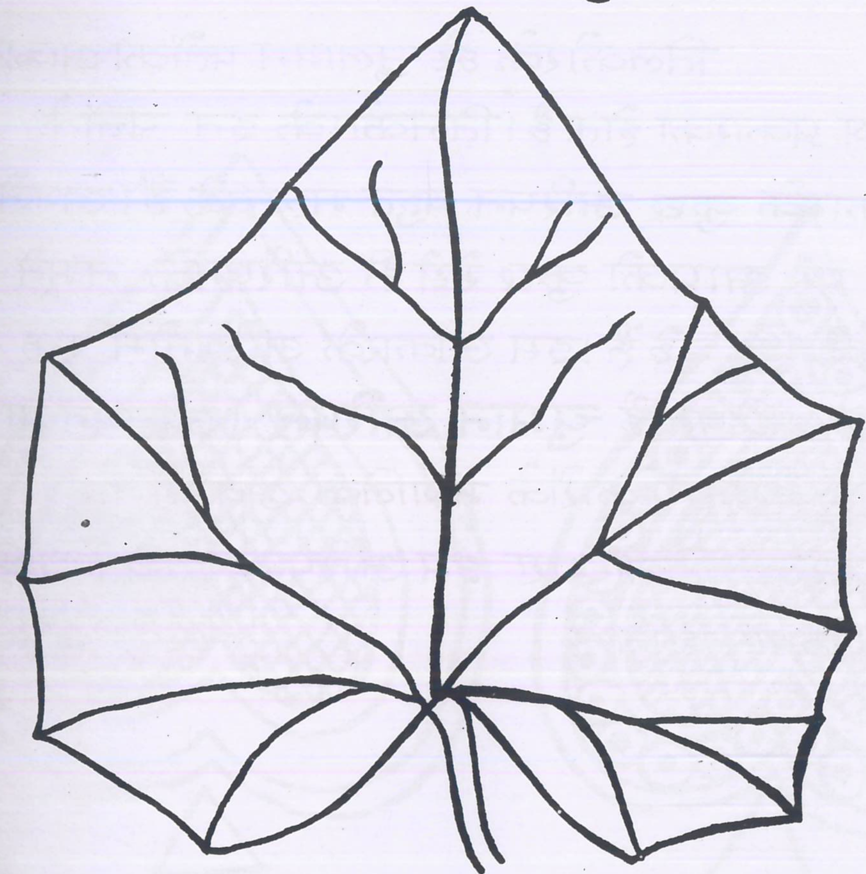
मिट्टीके बर्त्तनोके फूटनेसे जो छोटे-छोटे, टुकलीके आकारके, तिकोने- चौकोने कंकड़ बनते हैं, उन्हें **भुटका** कहा जाता है। इसी भुटका शब्दसे **झिटकी**का निर्माण हुआ है। झिटकीका उपयोग मिथिला चित्रशैलीमें प्रमुख अलंकरणके रूपमें होता है।



तिलकोर

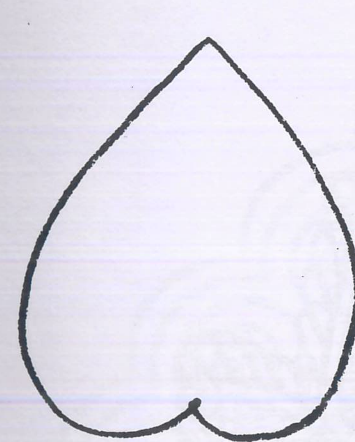
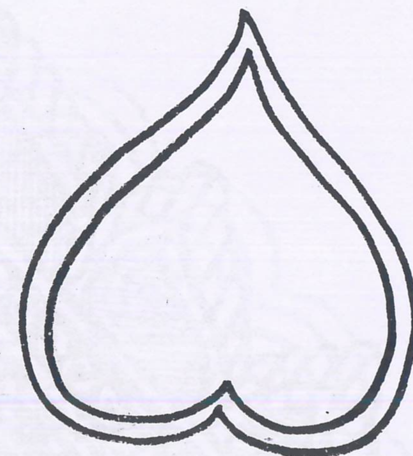
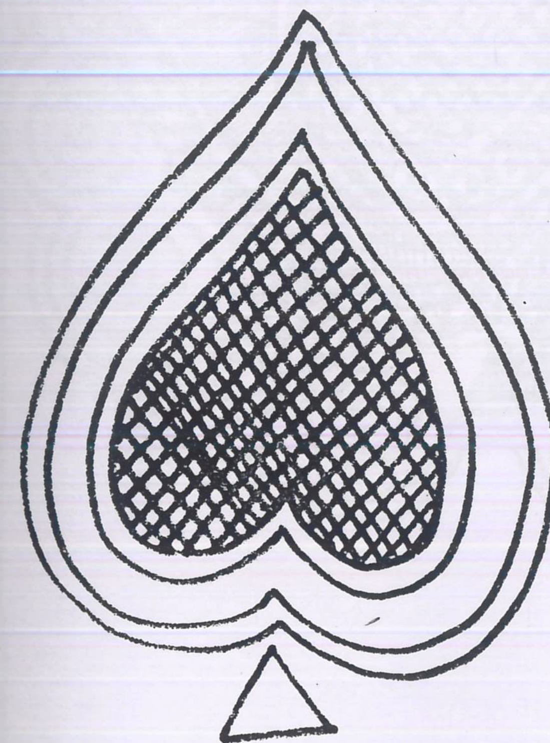
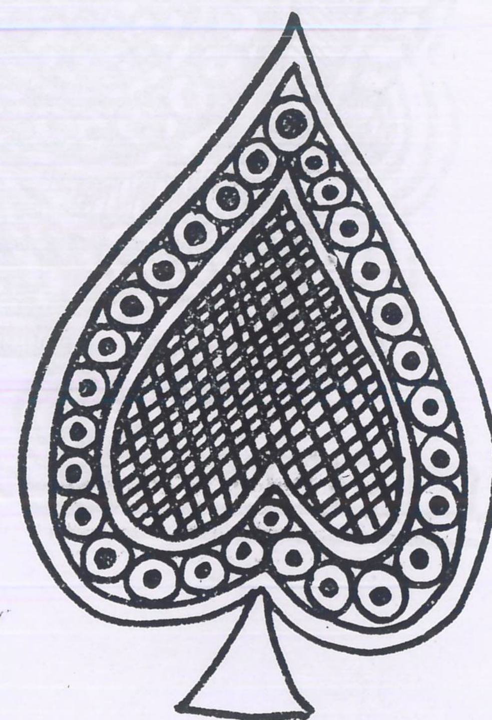
पाठ - ५

तिलकोर मिथिला चित्रशैलीके किसी अलंकरणका नाम नहीं बल्कि मिथिलामें पाई जाने-वाली एक ऐसी लताका नाम है, जिसे यहाँकी चित्र-कलाकी भाँति ही विशिष्ट सांस्कृतिक महत्व प्राप्त है।

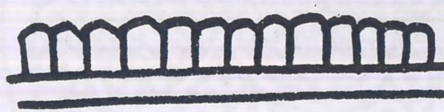


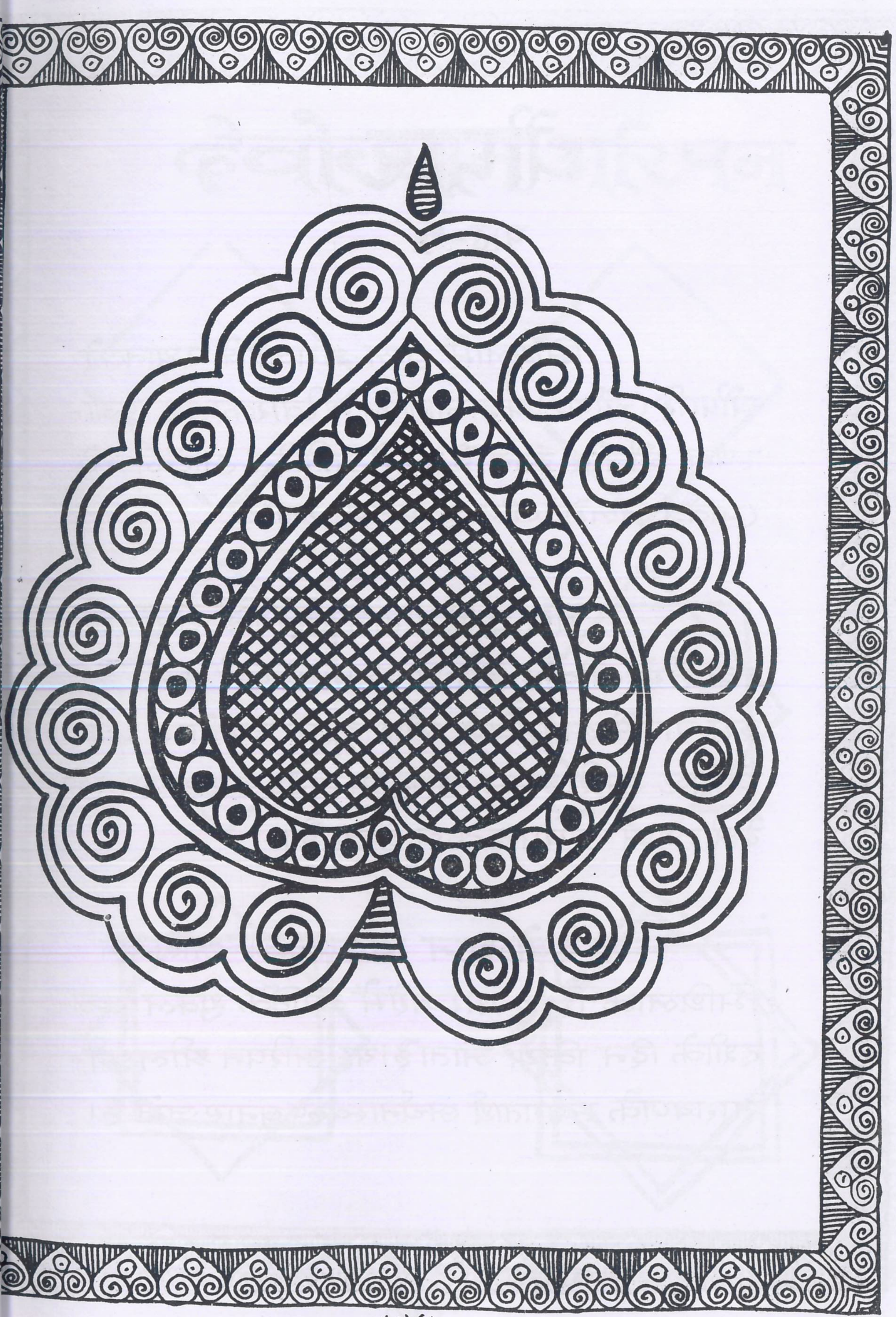
तिलकोरकी लता घर-आँगनमें पर्देके लिए लगाए गए घास-फूसके टाट या पेड़ों-झाड़ों पर लतरती है। इसके पत्तेको बेसनमें लपेटकर तले गए 'तरुआ' पौष्टिक और स्वादिष्ट होते हैं। त्यौहारों और विशेषतया जब कोई पाहुन या अतिथि किसीके घर आते हैं तो 'तिलकोरके तरुआ' तलनेका रिवाज मिथिलामें परम्परागत है।

तिलकोरके हरे मुलायम पत्तोंका आकार विशेष प्रकारका होता है। तिलकोरके इन पत्तोंके आकारके कुछ अरिपन बहुत महत्वके हैं। अगले पृष्ठों पर आपको कुछ ऐसे ही अरिपनके नमूने दिखाये जा रहे हैं। इस आकारके अरिपनोमें एक प्रमुख अरिपन है **चुमान अरिपन**। उपनयन या विवाह जैसे संस्कारोंके मांगलिक अवसरों पर सिद्धहस्ता स्त्रियों द्वारा इस अरिपनका चित्रण भूमि पर किया जाता है।







चौपार

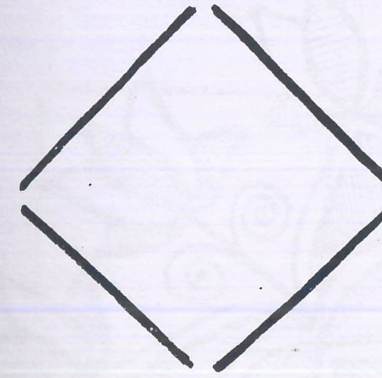
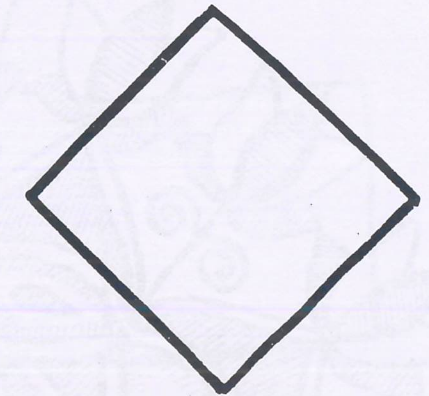
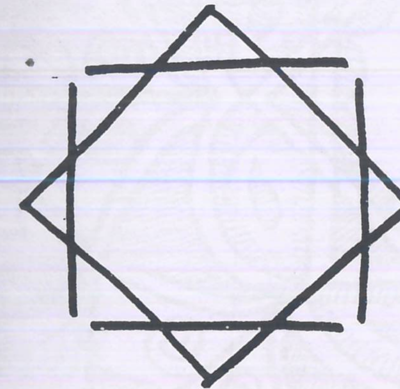
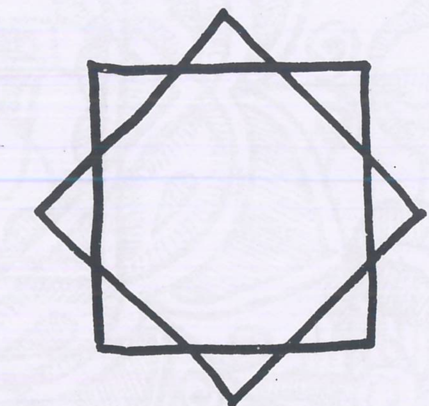
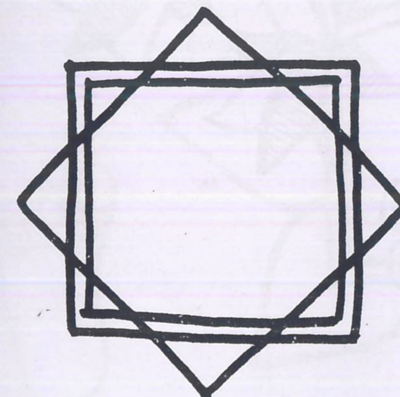
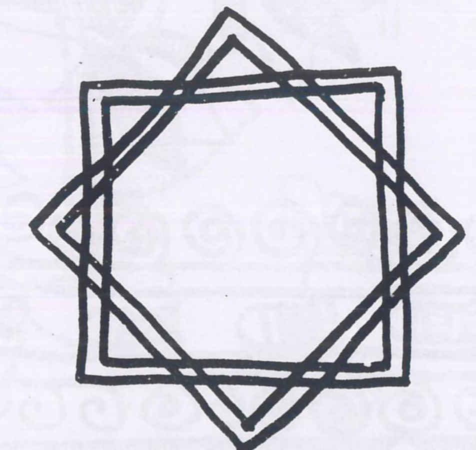
पाठ-६

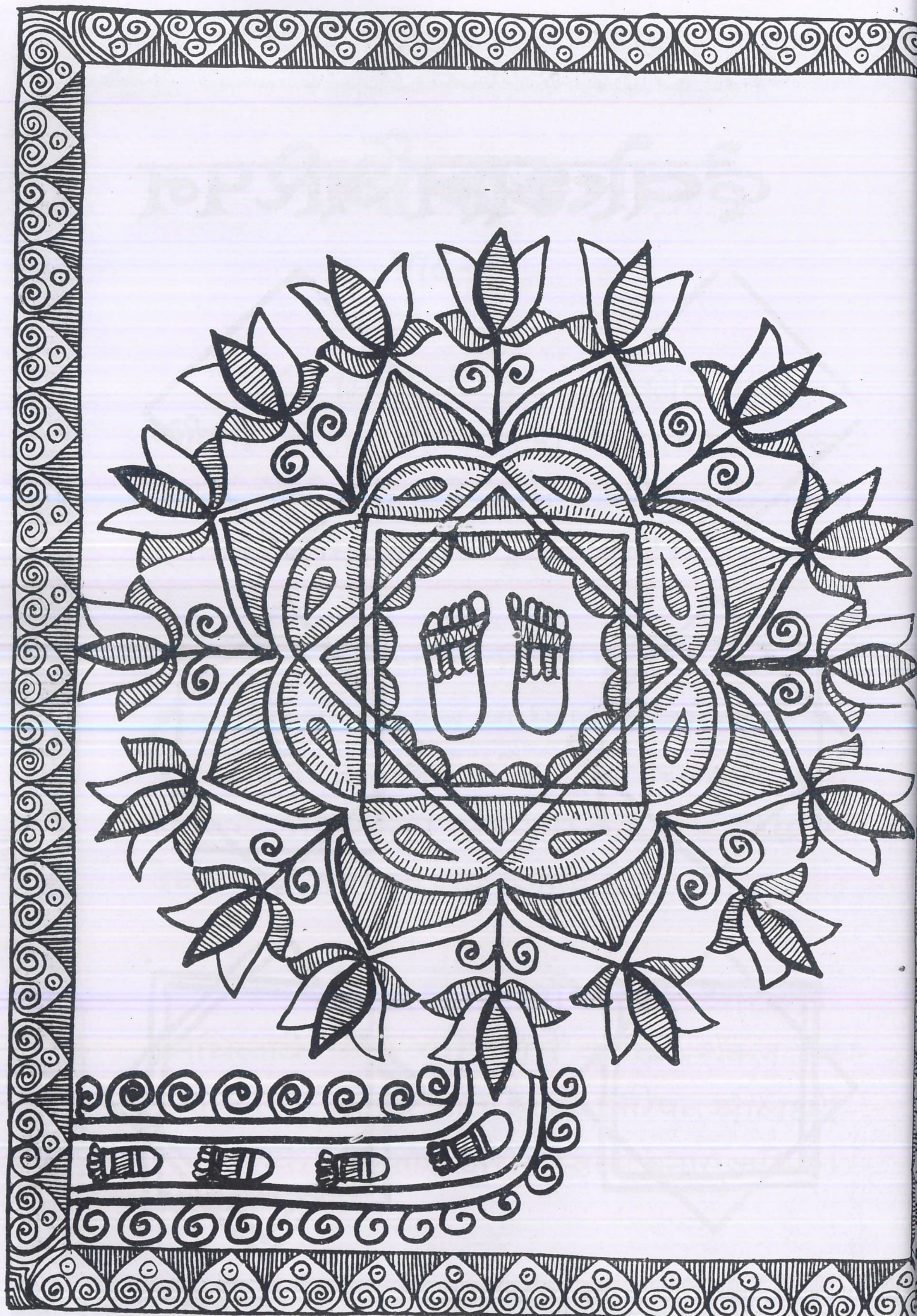
मिथिलामें कुल-भगवतीके स्थानको **चौपारि** (चौपार) कहा जाता है। परिवारका यह पुजा-स्थल चौकोर होता है जिसे प्रतिदिन अच्छिंजलसे (पवित्र जलसे) लीप कर पुजा की जाती है।

पाठ-२ में आपने पढ़ा कि चारों तरफ एक जैसे चौकोर क्षेत्र या स्थानको वर्ग कहते हैं। इस पाठमें आप वर्ग और दूसरे चिन्होंसे एक विशिष्ट अरिपनका अभ्यास करें। इस अरिपनको देवोत्थान अरिपन कहा जाता है।

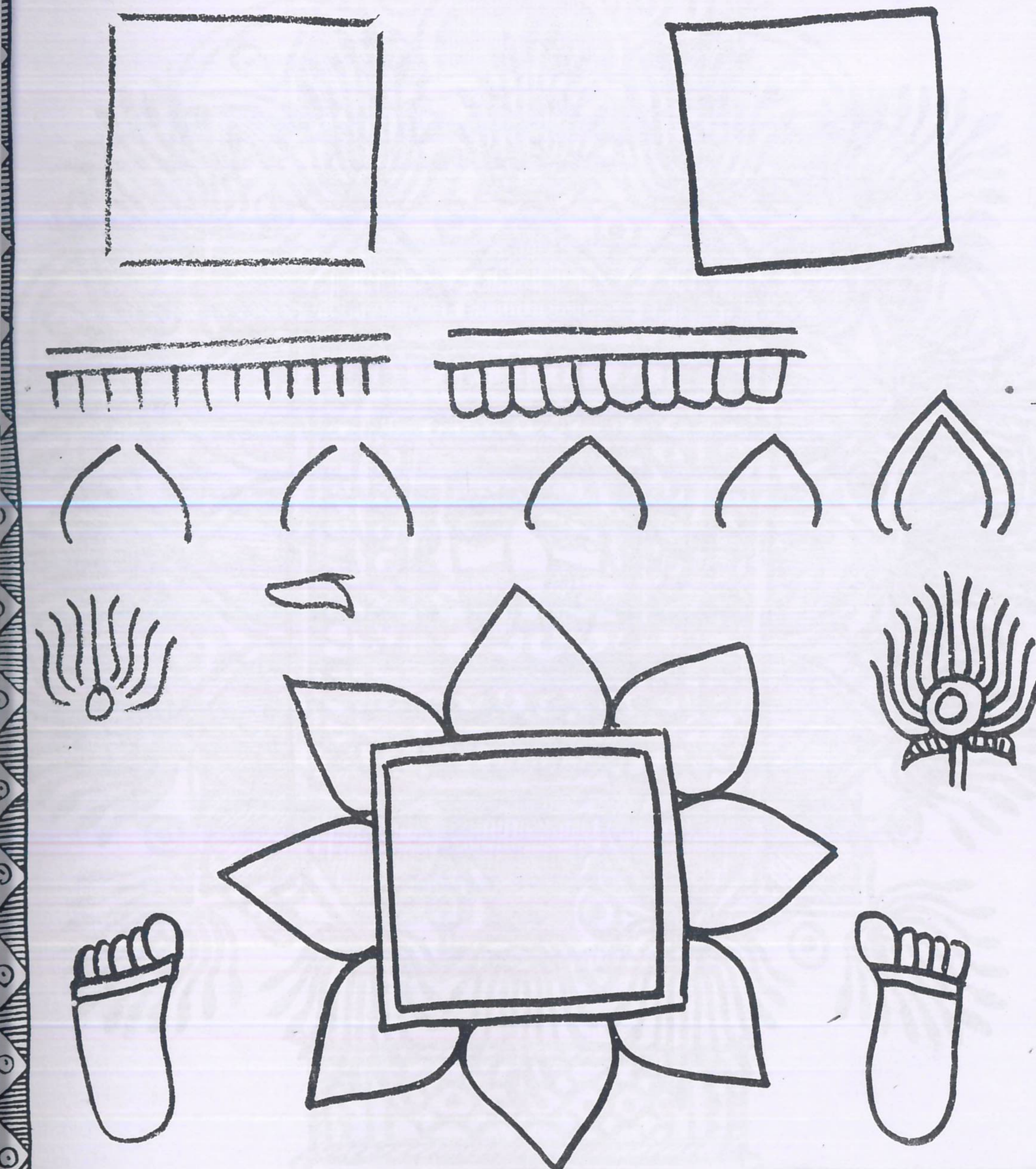
देवोत्थान अरिपनका आलेखन मिथिलाके हिन्दू परिवारोंमें कार्त्तिक शुक्ल एकादशीके दिन किया जाता है। यह अरिपन श्रीलक्ष्मी-नारायणके स्वागतार्थ अर्चनास्वरुप बनाए जाते हैं।

देवोत्थान अरिपन

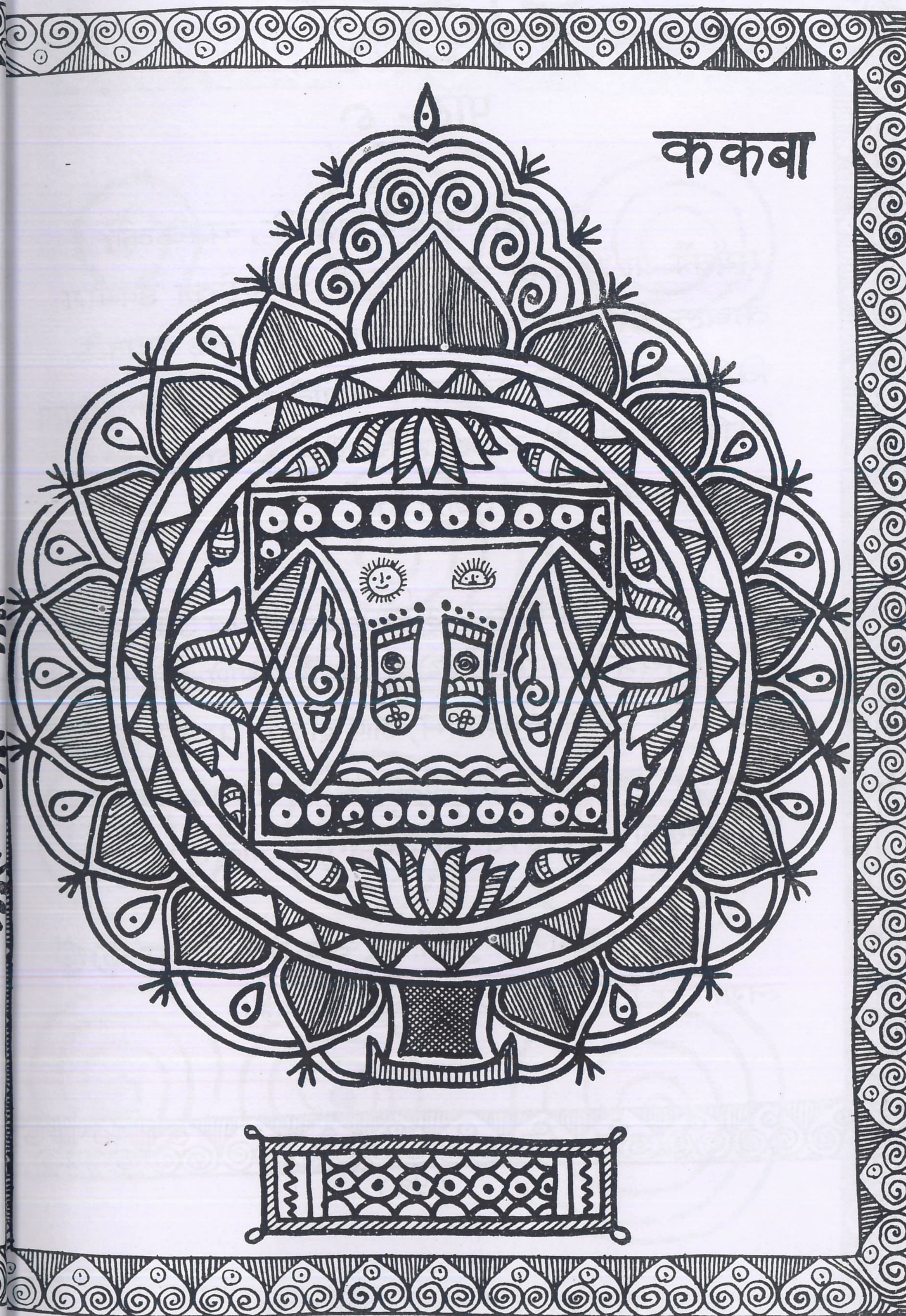









देवोत्थान अरिपन






ककबा

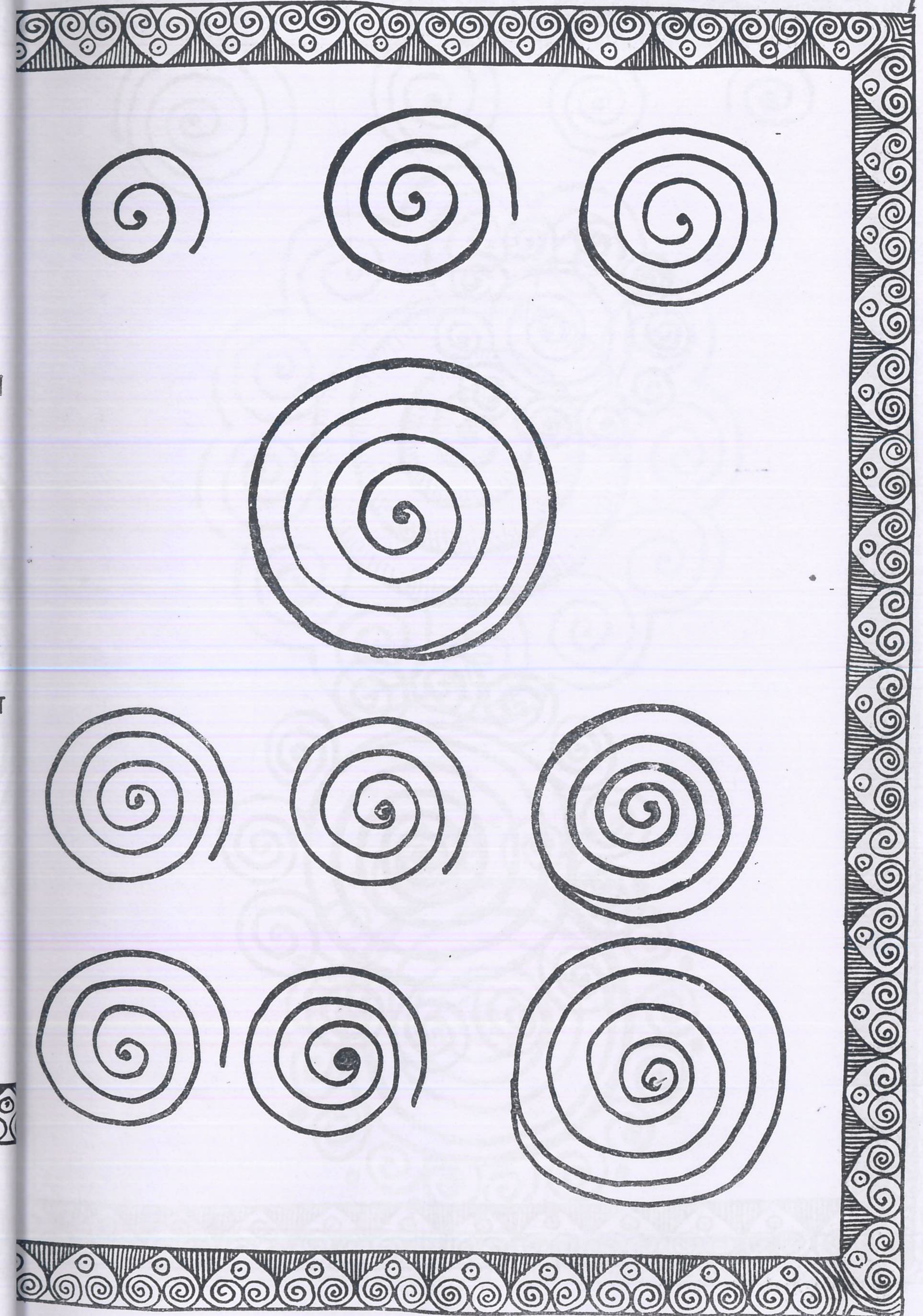
चकरी

पाठ - ९

चकरी कहते हैं चक्रको, चक्केको, सूर्यको या साँपकी कुंडलीको। चकरीका उपयोग केवल मिथिला चित्रशैलीमें ही नहीं बल्कि भारतके विभिन्न भागोंमे रहनेवाले लोगोंके द्वारा भी किया जाता है। मिथिलाकी ही एक और चित्रशैली — **गोदनामें** — चकरीका बहुत उपयोग होता है।

चकरीका उपयोग भित्तिचित्र और देह पर गोदना चित्रके रूपमें अधिक होता है। मिथिलाके गाँवोंमें, विशेषतया दलित समुदायोंमें, आप दीवारों पर बने चकरीको सहज ही देख सकते हैं। कहीं दीवारों पर गोबर-माटी थोप कर, तो कहीं रंगसे चकरी बनाए जाते हैं।

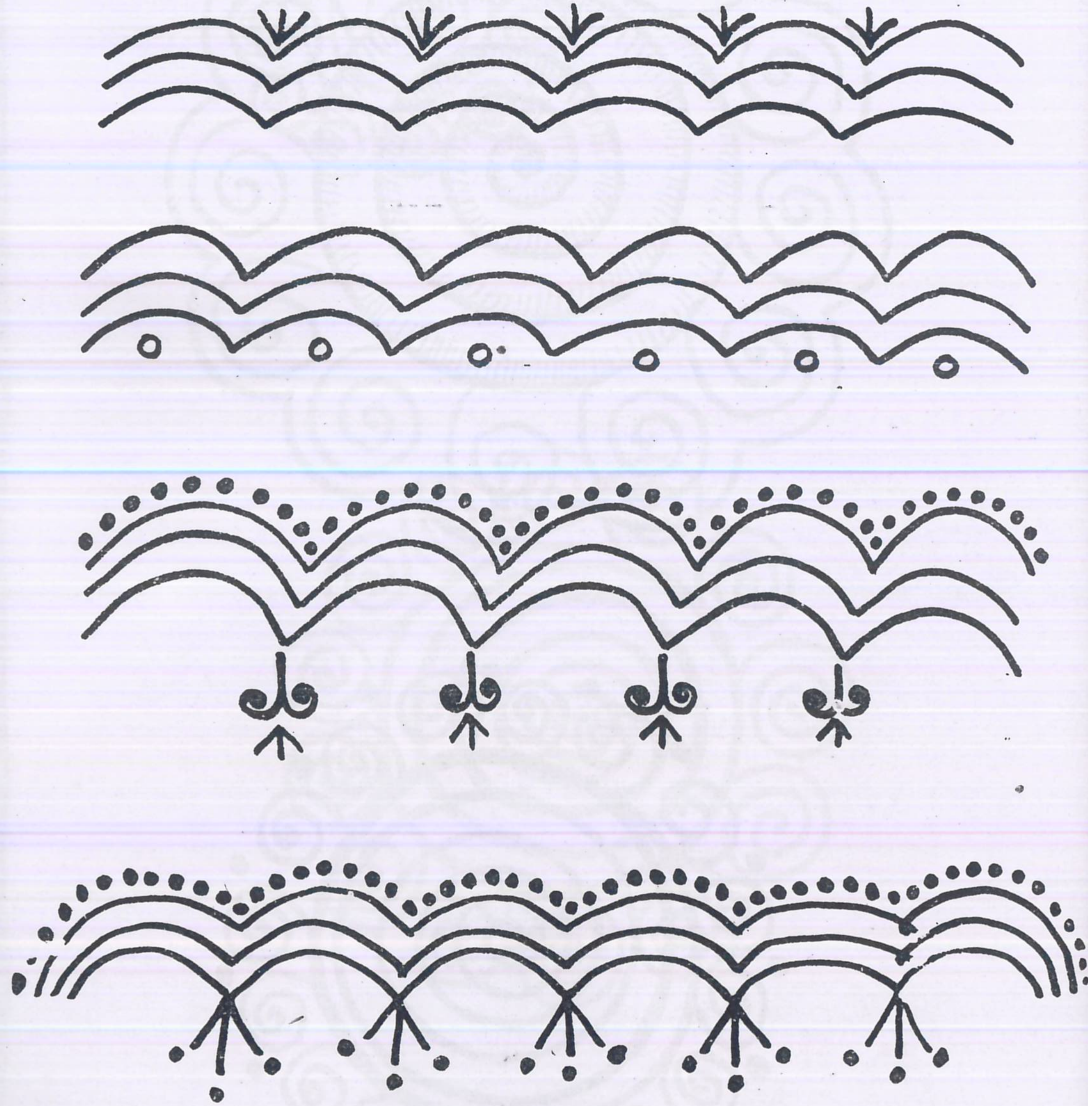
आगेके पृष्ठों पर चकरीमें **तामा ०९** लगा कर विस्तारीकरण दिखाया गया है।

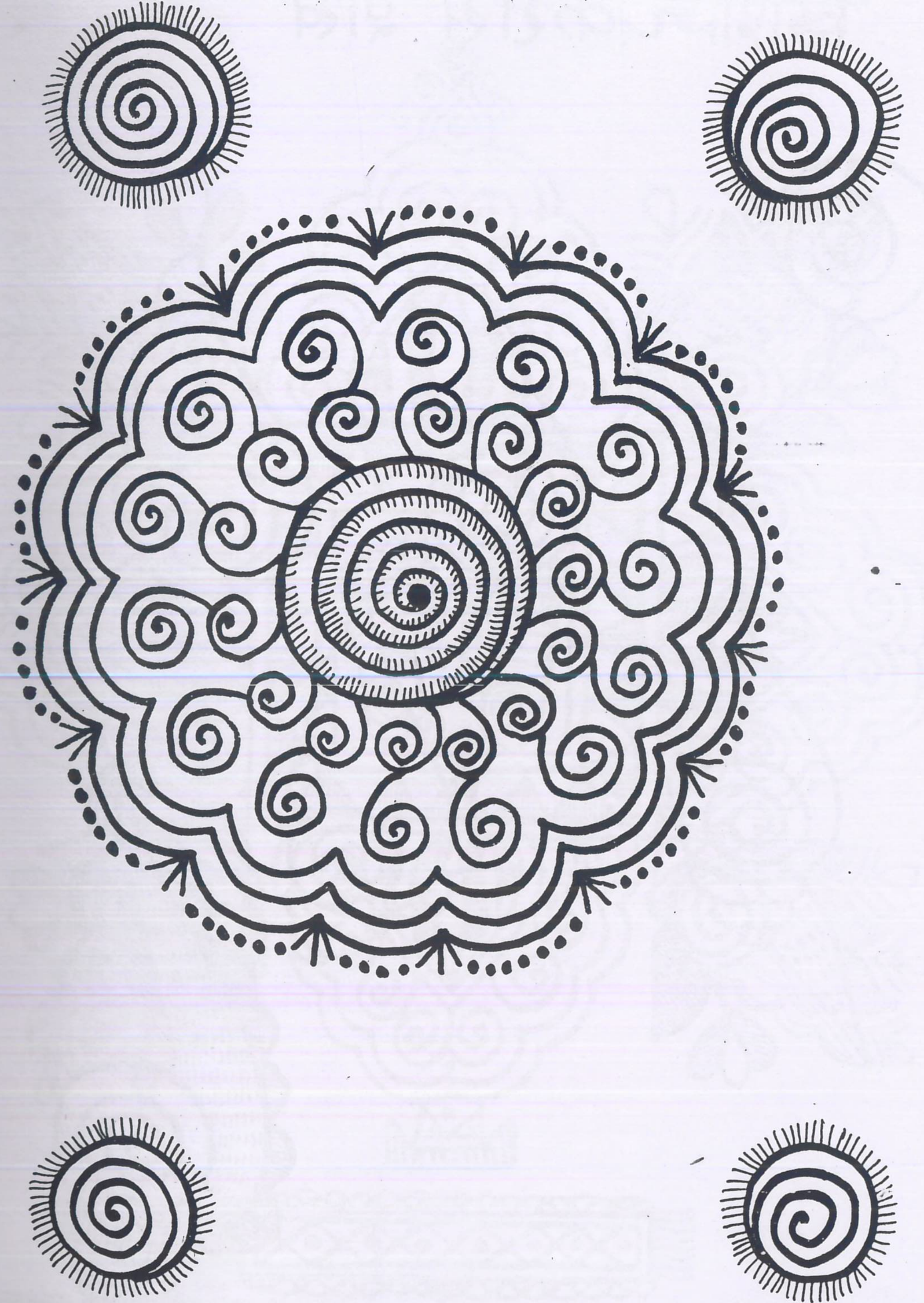




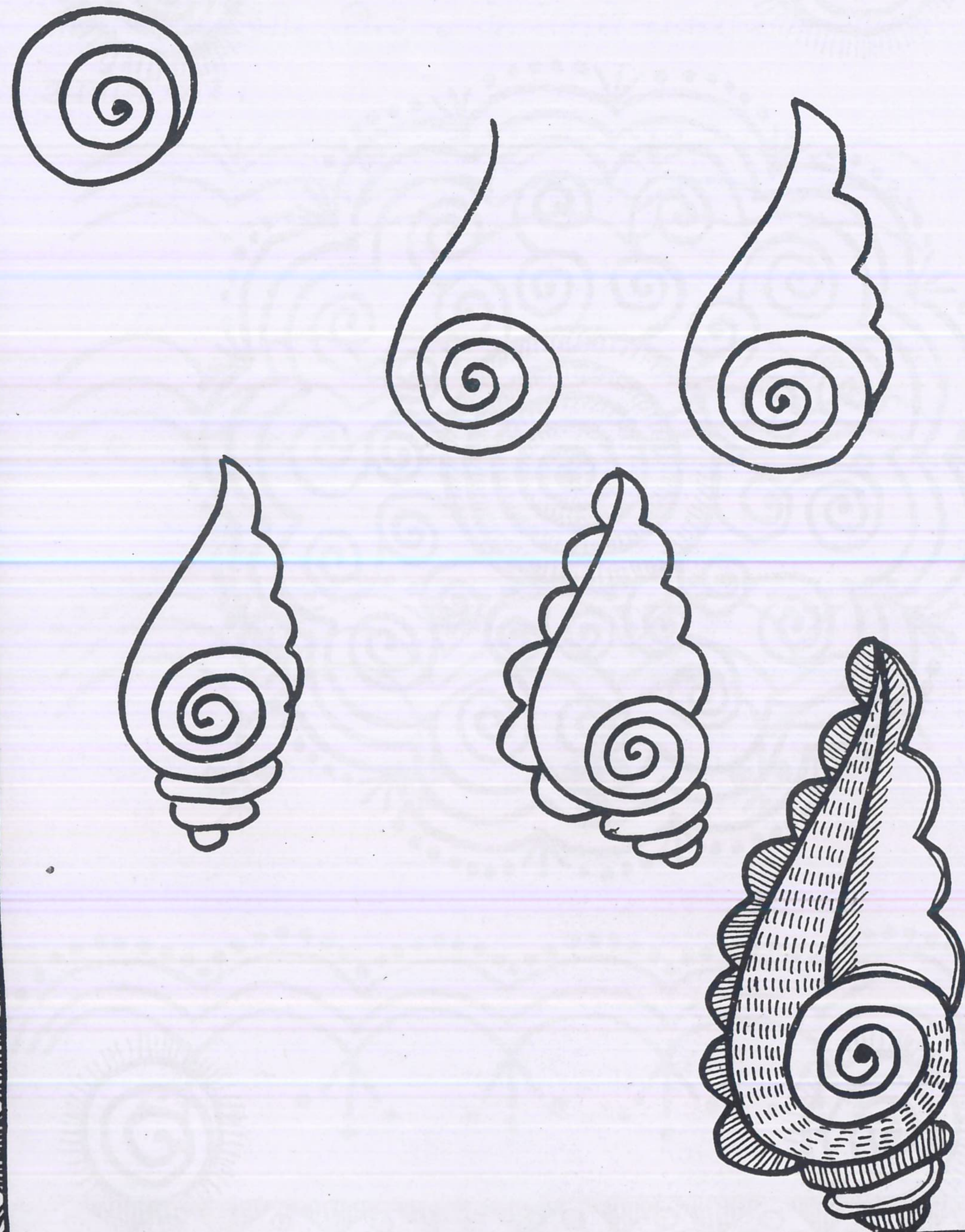


पिछले पाठोंका अभ्यास करते हुए आपने कई तरहके अलंकरणोंसे परिचय प्राप्त किया। अब आप त्रिशूल ↓, मेहराव ⌒⌒, छोटे गोले ०, तामा ୨୧ और बिन्दु • के मेलसे चकरीका व्यापक उपयोग करें।





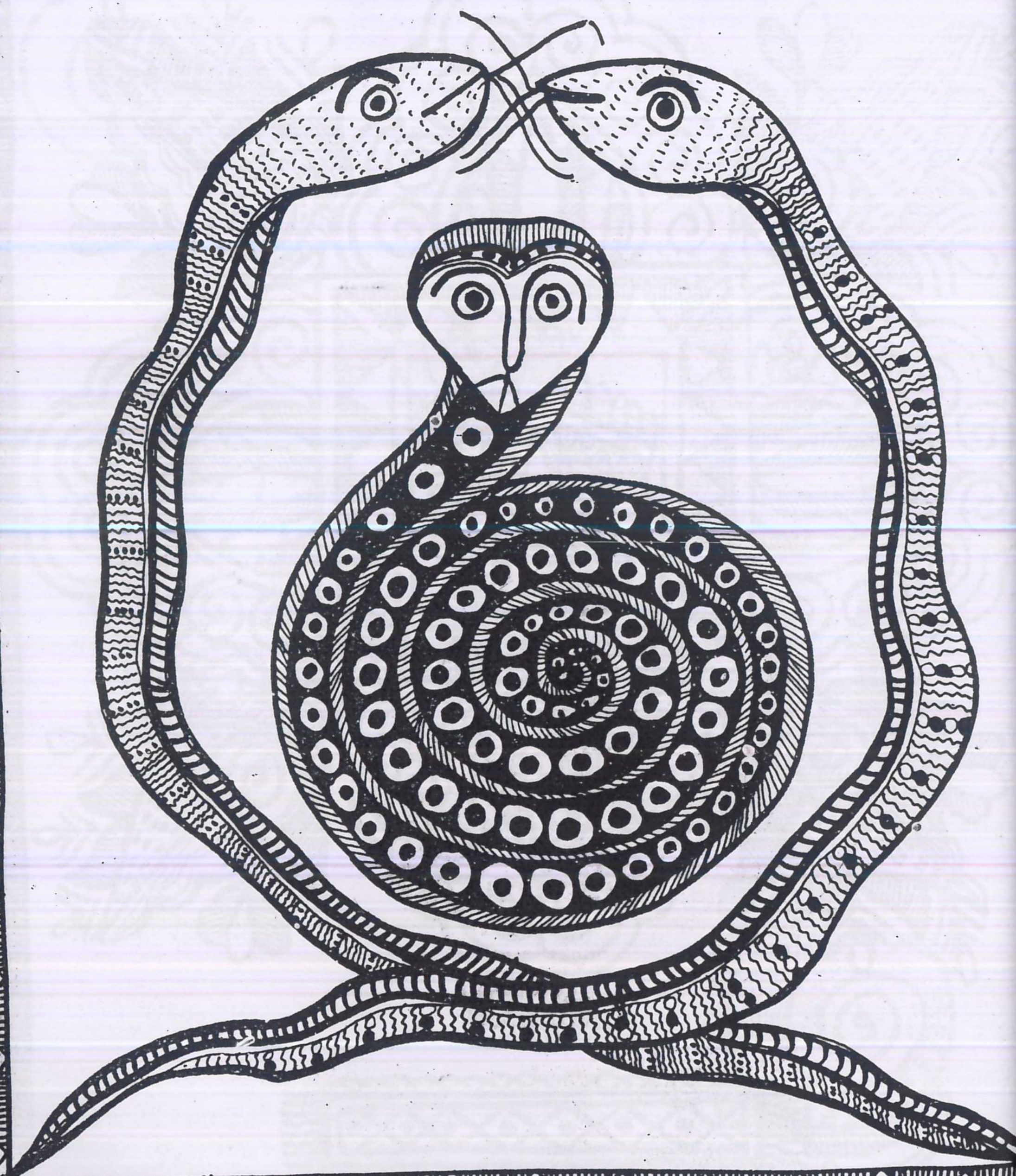
चकरीसे शंख



चौशंख



चकरीसे साँप



गर्भचक्र

गर्भचक्र मिथिला चित्रशैलीकी एक अतिप्राचीन कृति है, जो आजसे लगभग साठ-पैंसठ वर्ष पूर्व तक प्रयोगमें था।

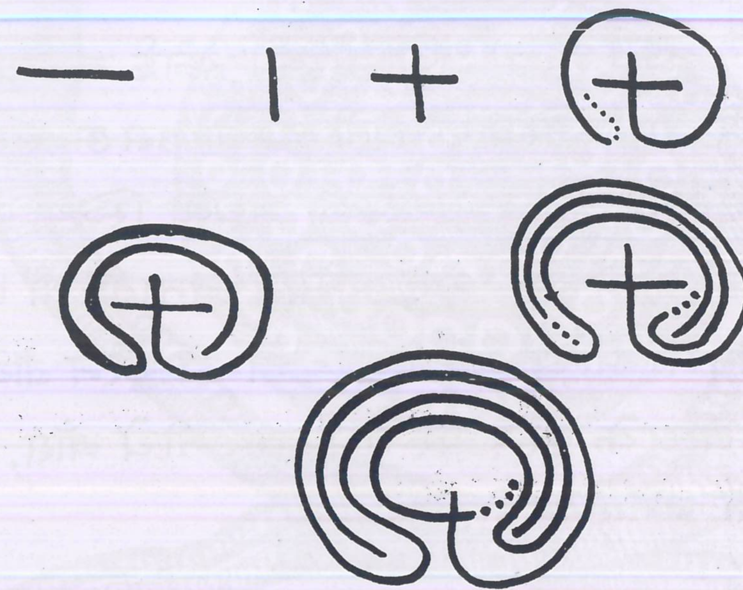
उन दिनो, परिवारकी कोई कान्या जब पहली बार रजस्वला होती थी तो उस अवसर पर परिवार और टोले-मुहल्लेकी सधवा स्त्रियाँ विधिपूर्वक भूमि पर **'ऋतु अरिपन'** बनाती थीं। इस अरिपनमें पाँच पुरैन — दो-दो पुरैन बाँये-दाँये और बीचके पुरैन पर गर्भचक्र; नीचे बाँस, फूल सहित बनाए जाते थे।

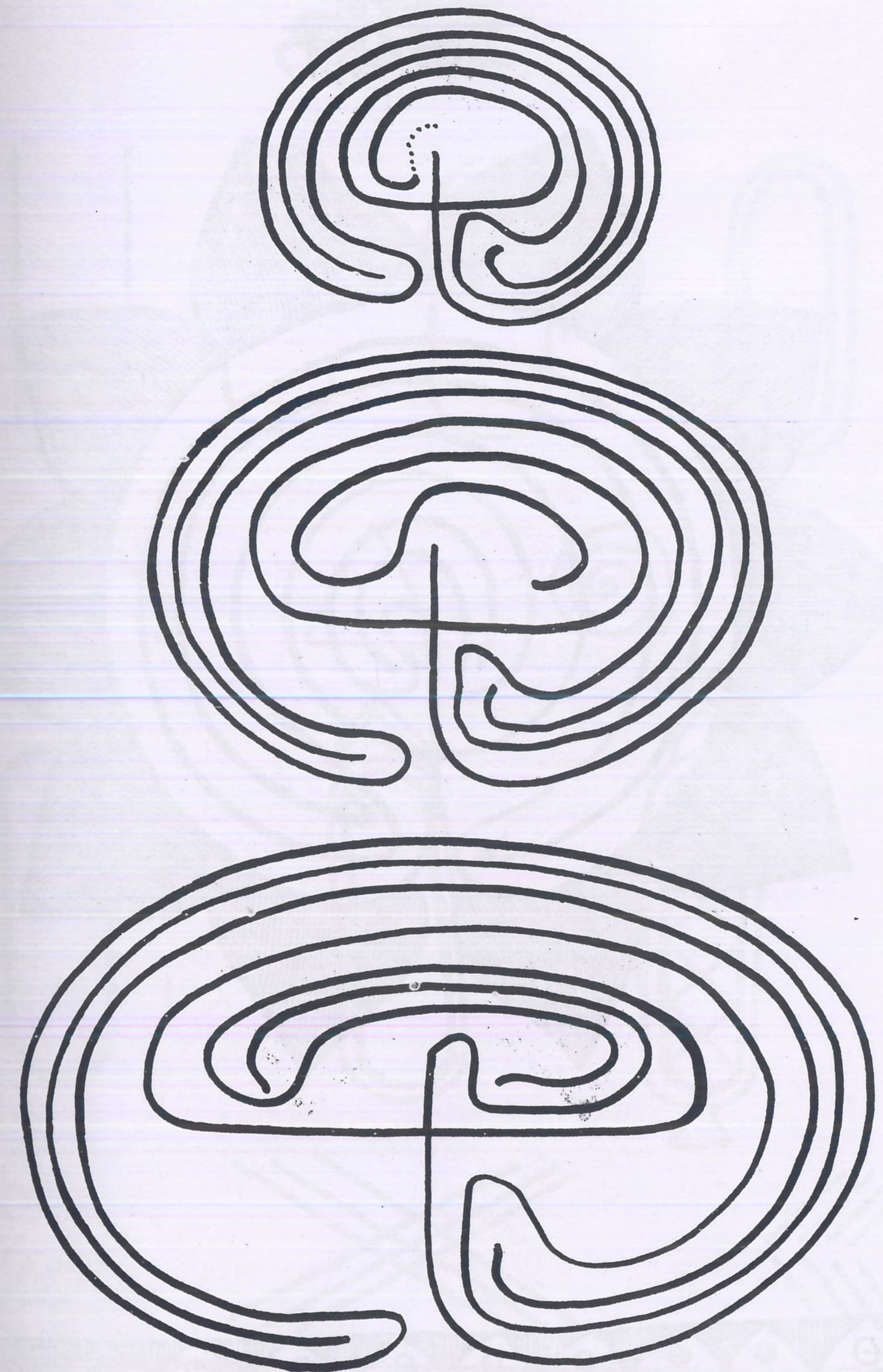
गर्भचक्र बनानेके पीछे कामना यह

होती थी कि जो कान्या 'उर्वरा' हुई है, वह अपने जीवन में 'एक पुरुष' (बाँस) के संग सुख-पूर्वक रहते हुए, गर्भ-सुख प्राप्त कर सके। **ऋतु-अरिपन** धरतीमाता-की अभ्यर्थनामें नव-रजस्वलाके हितार्थ बनाए जातेथे

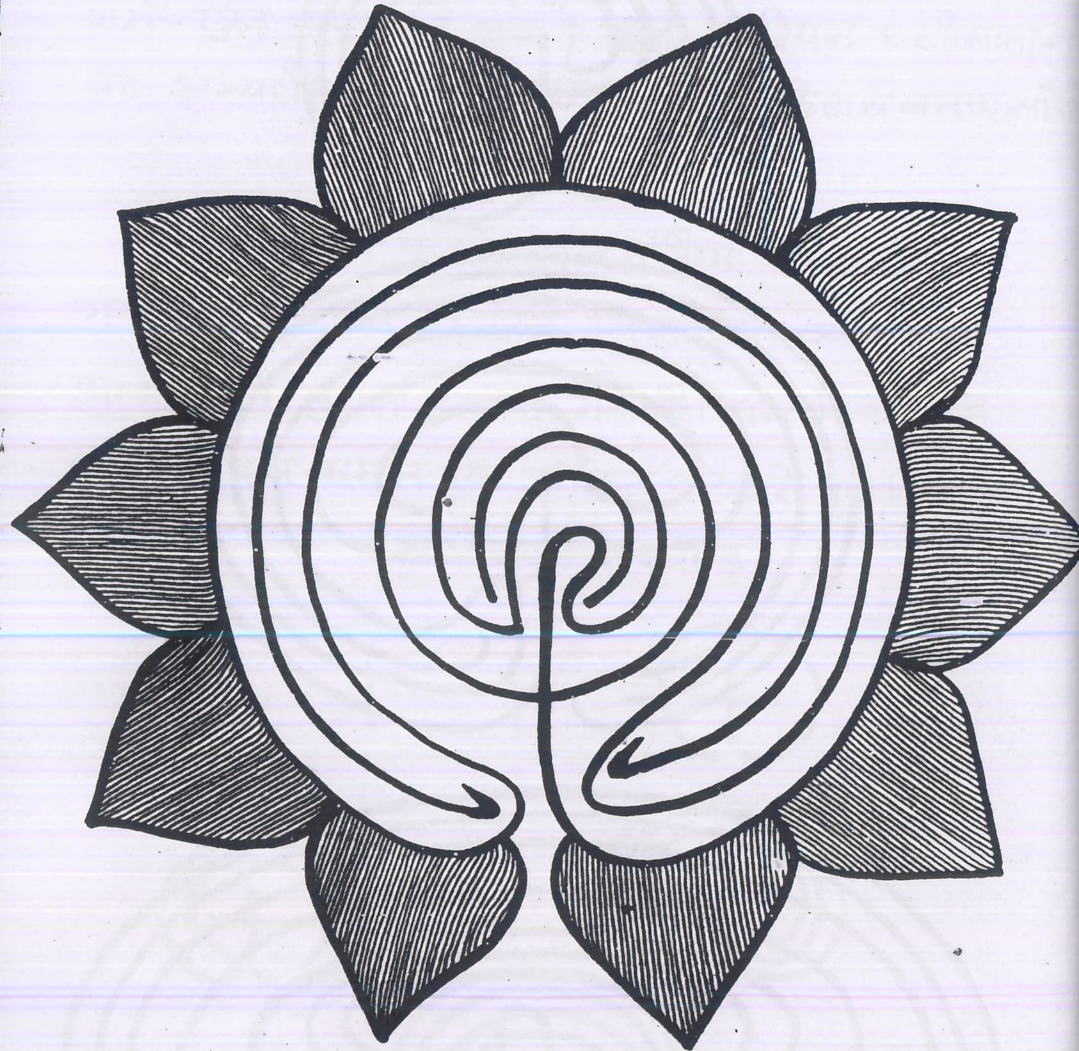
इस पाठमें भूलभुलैया परिपथवाले गर्भचक्रको दस खण्डोंमें विभाजित करते हुए अभ्यासको सुगम बनाया गया है। अन्तमें चक्रके बाहरसे दस कमल दल अंकित कर इसे पूर्ण किया है।

गर्भचक्रके खण्ड

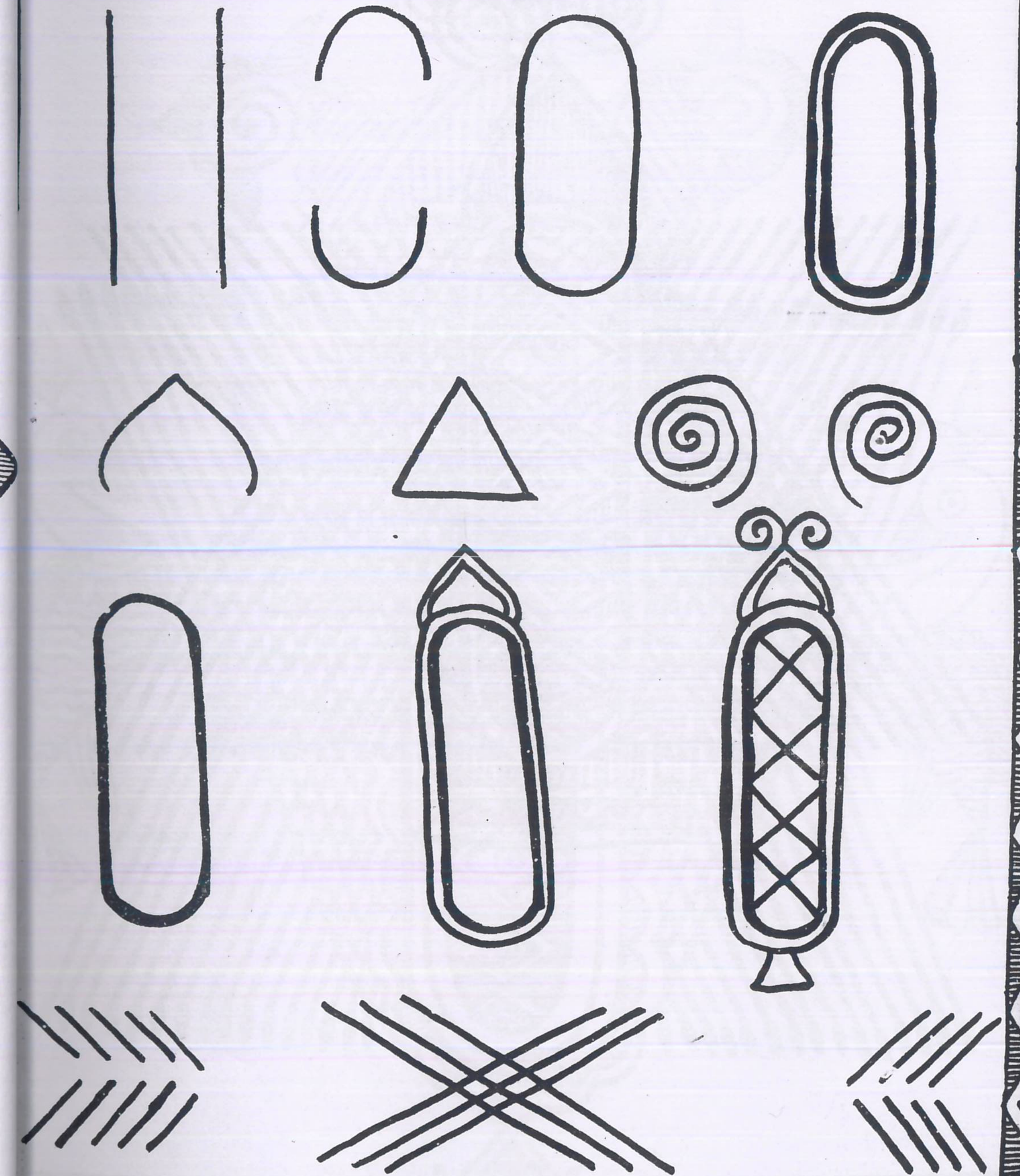




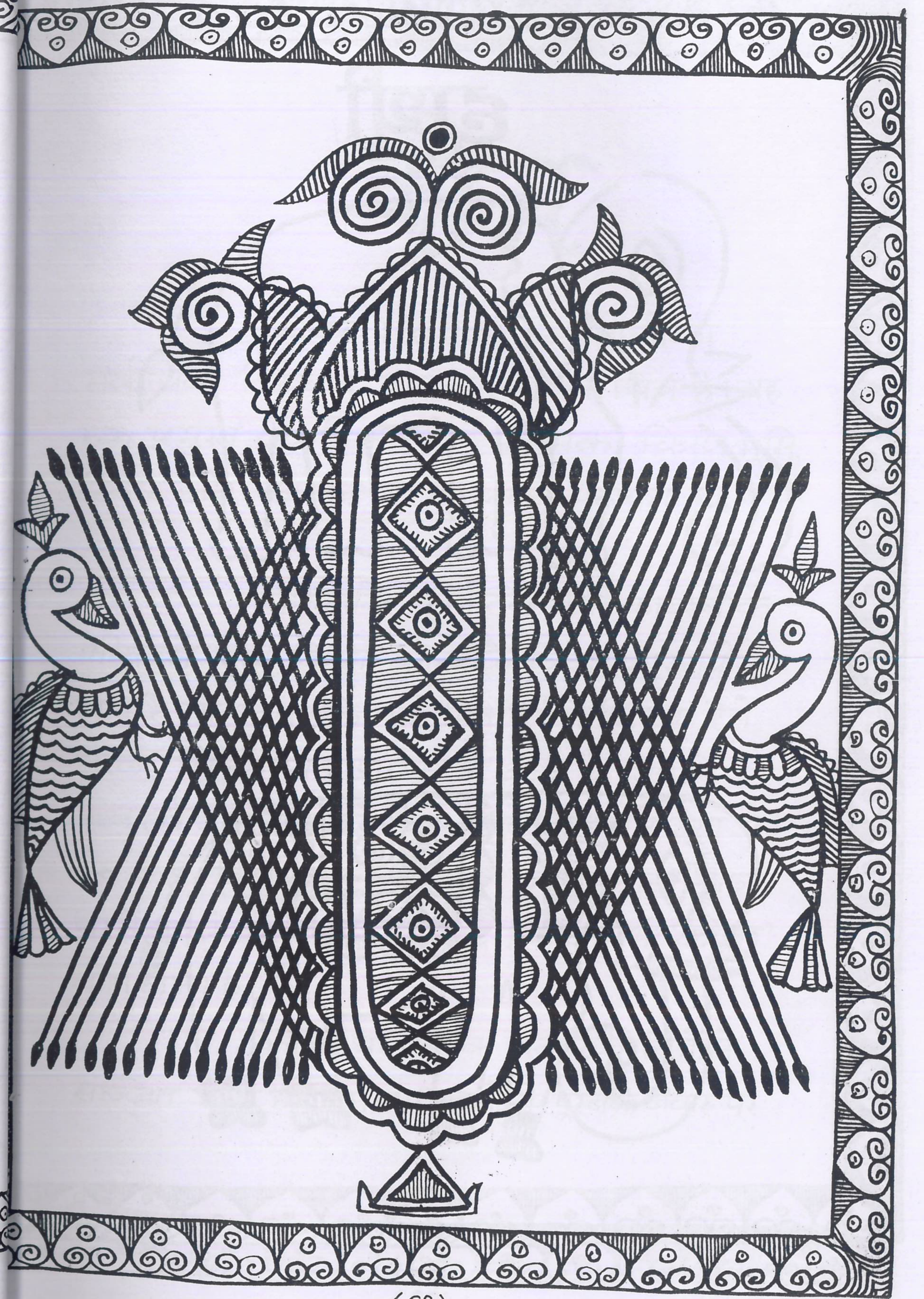
गर्भचक्र



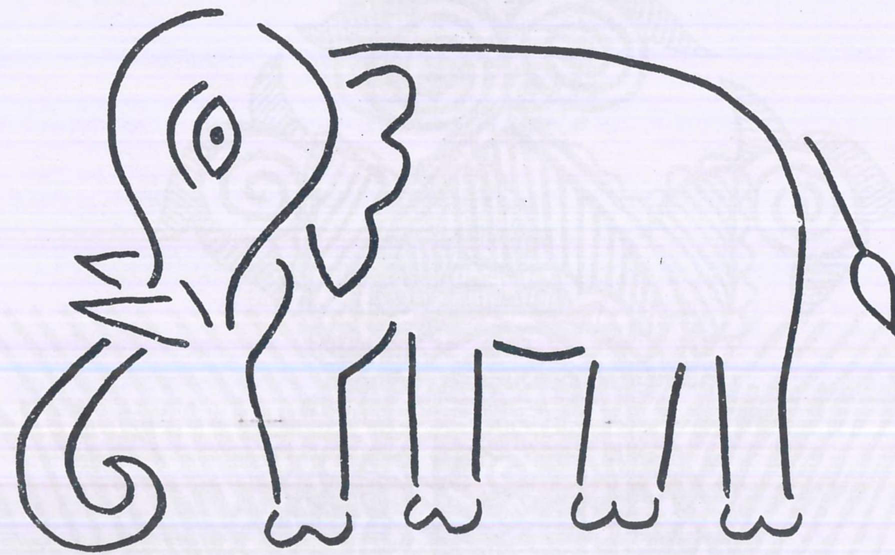
बाँस

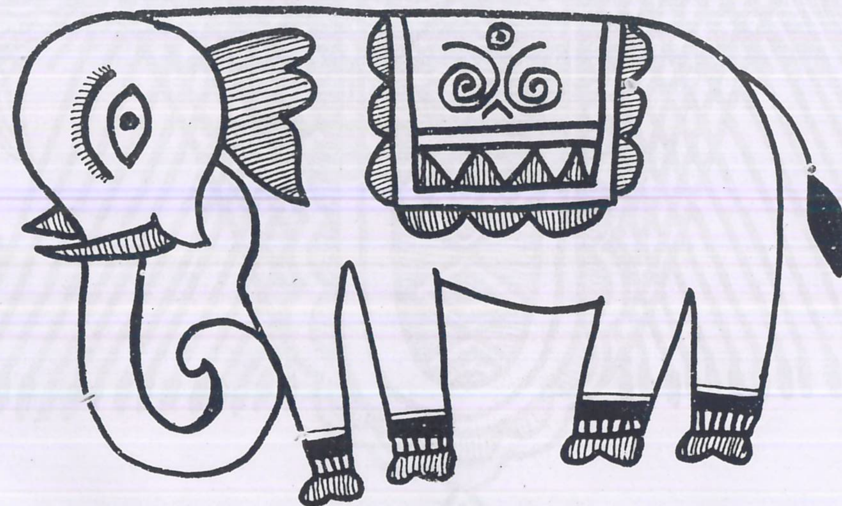






हाथी





कोबर

कोबर मिथिला चित्रशैलीका सर्वाधिक विख्यात और मनभावन चित्र है। यह एक प्रमुख वैवाहिक चित्र है जिसका चित्रण भूमि, दीवार और कागज पर करनेकी परम्परा है।

मिथिलाके कर्णाटकवंशी कायस्थोंके परिवारमें जब किसी कान्याके विवाहका आयोजन होता है तो विवाहके कई दिन पूर्वसे ही एक ऐसे घरका चित्रालेखन प्रारम्भ हो जाता है, जिसमें विवाहके तुरत बादसे वर-वधुका निवास होता है। इस कक्ष-विशेषको " कोबर " कहा जाता है। इस घरमें बननेवाले एक विशिष्ट चित्रको भी **'कोबर'** कहा जाता है।

कोबर घर अनेक प्रकारके चित्रोंसे सज्जित होता है। इस घरके भीतरी पूरबके दीवार पर

"कोबर" का विस्तृत चित्र अंकित किया जाता है, जिसके समक्ष भूमि पर बैठ कर वर-वधु कई प्रकारके विधिगत कार्य सम्पादित करते हैं। भीतरके अन्य दीवारों पर बाँस, बर्रे, कमलदह, दशावतार, दस महाविद्या, रास, स्वयंवर और अनेक प्रकारके श्रृंगारिक चित्र बनाए जाते हैं। घरके चारों कोणोंमें, ऊपरी भागमें, "**नैनायोगिनी**" के चित्र बनाए जाते हैं। नैनायोगिनी वस्तुतः "एक सौ आठ योगिनियों" में एक तांत्रिक महाशक्ति हैं, जो वर-वधुके निर्विघ्न आनन्द-विहारके लिए निरन्तर पहरा देती रहती हैं।

कोबर चित्रमें मुख्यतः पुरैनके सात बड़े वृत्ताकार पत्ते —— एक केन्द्रमें और दाँये-बाँये तीन-तीन — और उनके साथ छोटे-छोटे सात पत्ते मिलाकर कुल चौदह पत्ते; बीचके पुरैनका भेदन करता हुआ पुष्पित बाँस; सम्पूर्ण परिधिको घेरते हुए सुग्गे; मत्स्य; साँप; कच्छप; बिच्छू; कँकोर; शंख; भौंरा; नव- नवग्रह; सूर्य-चन्द्रमा; पंचवृक्ष (बेल, केला, सुपाड़ी, आम, महुआ) और लतादि (पान, लवंग, इलायची) आदि होते हैं।

विवाह-कार्यके सम्पादनके लिए आँगनके बीचोबीच एक चौकोर मण्डप (मड़वा) का निर्माण किया जाता है जिसकी भूमि पर, चावलके पिठारसे, विस्तृत कोबर अरिपनका आलेखन किया जाता है। कान्या-पक्ष द्वारा, भित्ति और भूमि पर कोबरके चित्रणके अतिरिक्त विवाहमें इसका चित्रण कागज पर भी किया जाता है। वर-पक्षके द्वारा, बड़े आकारके पाँच सादे कागज पर ——दो कागज पर लाल रंगसे कोबर, एक कागज पर दशावतार, एक पर कमलदह और एक कागज पर हरे रंगसे बाँस बनवाकर लाया जाता है, जिनमें सिन्दूरके पाकेट रखे होते हैं। इनका उपयोग विवाहसे लेकर चतुर्थी तक विभिन्न विधिके लिए किया जाता है। विवाहके बाद, द्विरागमनके लिए (वधुकी पहली विदाई) वर अपने साथ, सादे कागज पर पीले रंगसे बना कोबर चित्र और उसमें सिन्दूरका पाकेट रखकर लाता है। सन् १९३५-'४० ई० तक, द्विरागमनके लिए, बारह हाथकी साड़ी पर पीले रंगसे कोबरका पल्लू बनाकर लानेका भी प्रचलन था। कोबर चित्रके आलेखनका प्रचलन मैथिल ब्राह्मणोंके विवाहमें भी विधिगत है।

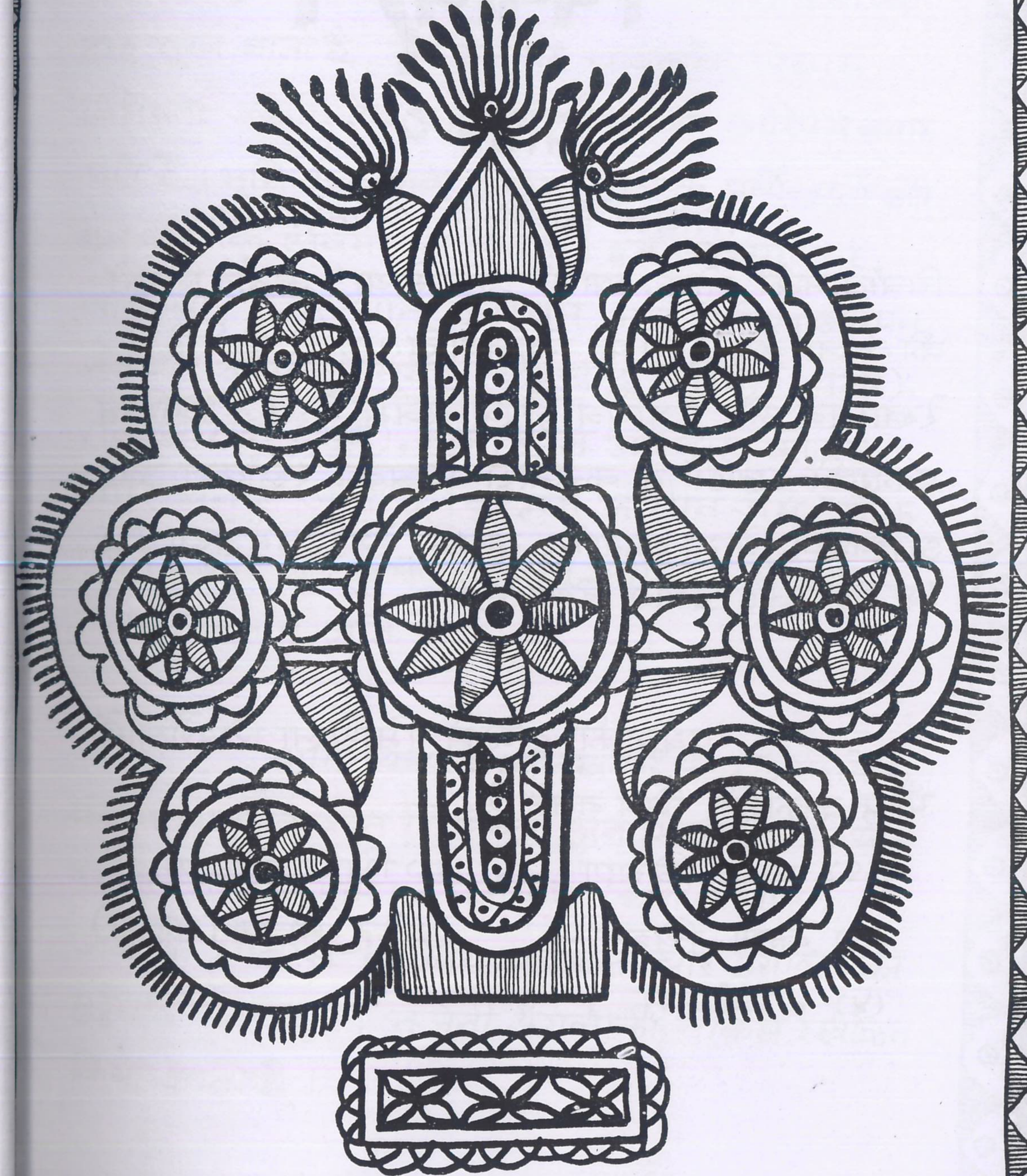
कोबरमें प्रयुक्त सभी अवयव जैसे साँप, माछ, बिच्छू, बाँस, पुरैन आदि वस्तुतः प्रतीकात्मक हैं, और उनके विशिष्ट अर्थ हैं। चित्रशैलीके अन्तर्गत, ये प्रतीक लोकविद्याके रूपमें विशेष अध्ययनके विषय हैं, जिनका आप पृथक पाठ और पुस्तकमें मनन करेंगे।

कोबर मिथिलाकी गरिमामयी संस्कृति, कला और बौद्धिक परम्पराका एक विलक्षण प्रतीक है। नारी और पुरुषके चिरन्तन संबंध और गार्हस्थ्य जीवनकी महान परम्पराका द्योतक "कोबर" एक चित्र ही नहीं, अपितु मैथिल जीवनका विराट और विशद वाङ्मय है।

एक दंतकथाके अनुसार, देवताओंके खजांची (कोषाध्यक्ष) असुर-नायक और शिवजीके मित्र **कुबेर** थे। उसने किसी प्रकार लक्ष्मीको पत्नी रूपमें प्राप्त कर लिया, किन्तु वह कुरूप थे। कुबेरने लक्ष्मीको प्रसन्न करने हेतु समुद्रमें एक **'कोबर'** घर बनाया, जिसमें नक्षत्र और पृथ्वीके सभी जीव और वनस्पति सज्जाकी तरह लगाए गए थे।



कोबर



चित्रांकन

पाठ - ८

मिथिला चित्रशैलीके आलेखन या चित्रांकनको लोकभाषामें "लिखिया" अर्थात लिखने की कला कहते हैं। यह लिखिया दो तरहकी होती है — रेखाचित्र और रंगचित्र। रेखाचित्रमें केवल विभिन्न प्रकारकी रेखाओं या कचनीसे चित्रका रेखांकन और अलंकरण किया जाता है, जबकि रंगचित्रमें रेखा और रंग दोनोका प्रयोग होता है।

प्रयोगकी दृष्टिसे मिथिला चित्रशैलीमें पाँच प्रकारके चित्र बनते हैं —

(१) भूमि चित्रण ; (२) भित्ति चित्रण ;
(३) कथा-चित्रण ; (४) देह-चित्रण (गोदना)
(५) वस्त्रांकन ।

भूमि-चित्रणके लिए सर्वप्रथम गोबर-माटीसे भूमिको लीपा जाता है और जब भूमि अच्छी तरह सूख जाती है, तब उस पर चावलके पिठारसे विशेषतः ज्यामितिक आकारके चित्र या **अरिपन** बनाए जाते हैं। भूमि-चित्रणके प्रयोग मुख्यतः पर्वों-व्रतों और शुभ कार्योंके अवसर पर होते हैं। इन अवसरों पर ककबा, देवोत्थान अरिपन, भातृ द्वितिया अरिपन, नवान्न अरिपन (सूर्य), चौठचन्द्र अरिपन (चन्द्र), रवि अरिपन (सूर्य), चुमाओन अरिपन, कोबर आदि बनाए जाते हैं। कुछेक अरिपन जैसे "साँझ पूजन" और पूर्व-प्रचलित "ऋतु अरिपन" गायके गोबरसे बनाए जाते हैं।

भूमि-चित्रणके आलेखनमें, चार उँगलियोंके कोशमें चावलके श्वेत रंग लेकर अनामिकाकी (चौथी उँगली) नोकसे भूमि पर रेखांकन किया जाता है, जबकि गोबरसे लिखिया करनेमें चार उँगलियोंको मुट्ठीबंद करते हुए, तर्जनी उँगलीकी नोकसे रेखांकन किया जाता है।

भित्ति-चित्रणके मिथिला चित्रशैलीमें व्यापक प्रयोग हैं। आश्विन मासमें, दुर्गापूजाके अवसर पर दुर्गा-कालीके चित्र घरके द्वार पर बनाए जाते हैं। वर्षा ऋतुके बाद, दीपावलीके पूर्व, जब घरोंकी सफेदी या लिपाई-पुताई का काम पूरा हो जाता है तो लोग अपने दीवारों पर तरह-तरहके चित्र बनाते हैं। जब परिवारमें किसीके मुण्डन-उपनयन या विवाहका आयोजन होता है तो विशेष रूपसे भित्ति-चित्रणकी परम्परा है।

देह-चित्रण या गोदना चित्रशैली और मिथिला चित्रशैली दोनो 'संग-बहिना' हैं; एक-दूसरेके बहुत करीब और भावोंसे सम्पृक्त। सन् १९३४-'३५ ई० तक ऊँची और दलित दोनो ही जातियोंकी स्त्रियाँ अपनी देह पर गोदना चित्र गोदवाया करती थीं, किन्तु चालीसके दशकके बाद उच्च जातिकी स्त्रियोंमें इसका चलन बंद हो गया। श्रमिक और दलित समुदायोंकी स्त्रियोंमें यह प्रथा आज भी पूर्वकी तरह ही प्रचलित है। नटिनिआ जातिकी

घुमन्तु गोदनहारिनि स्त्रियाँ गाँवोंमें घूम-घूम कर परम्परागत सूई और रंगसे स्त्रियों-बालिकाओंकी देह पर गोदना गोदती हैं। सन् १९६० के दशकमें गोदना शैलीके चित्र भी मिथिला शैलीकी तरह ही हस्तनिर्मित कागज पर, व्यावसायिक उद्देश्यसे बनने लगे। इस शैलीके मुख्य शिल्पी दुसाध और मुसहर जातिके लोग हैं।

वस्त्रांकनका काम मिथिला चित्रशैली और गोदना चित्रशैलीमें, प्रयोगके तौर पर, इस पुस्तकके प्रथम हस्तलिखित संस्करणके आधार पर शुरू हुआ। यह घटना सन् १९६४-'६५ की है। इससे पूर्व इन दोनो चित्रशैलियोंमें शिक्षण-प्रशिक्षणकी कोई नियत विधि नहीं थी। शिल्पी परम्परागत विधिसे कार्य करते हुए अपने शिष्यों या बच्चोंको शिल्पका प्रशिक्षण देती थीं। प्रशिक्षणकी परम्परागत विधि होनेके कारण मिथिला चित्रशैलीका प्रचलन मात्र दो उच्च जातिकी स्त्रियों — ब्राह्मण और कायस्थ — तक सीमित था। यद्यपिकि भारत सरकारके प्रयाससे सन् १९६६-'६८

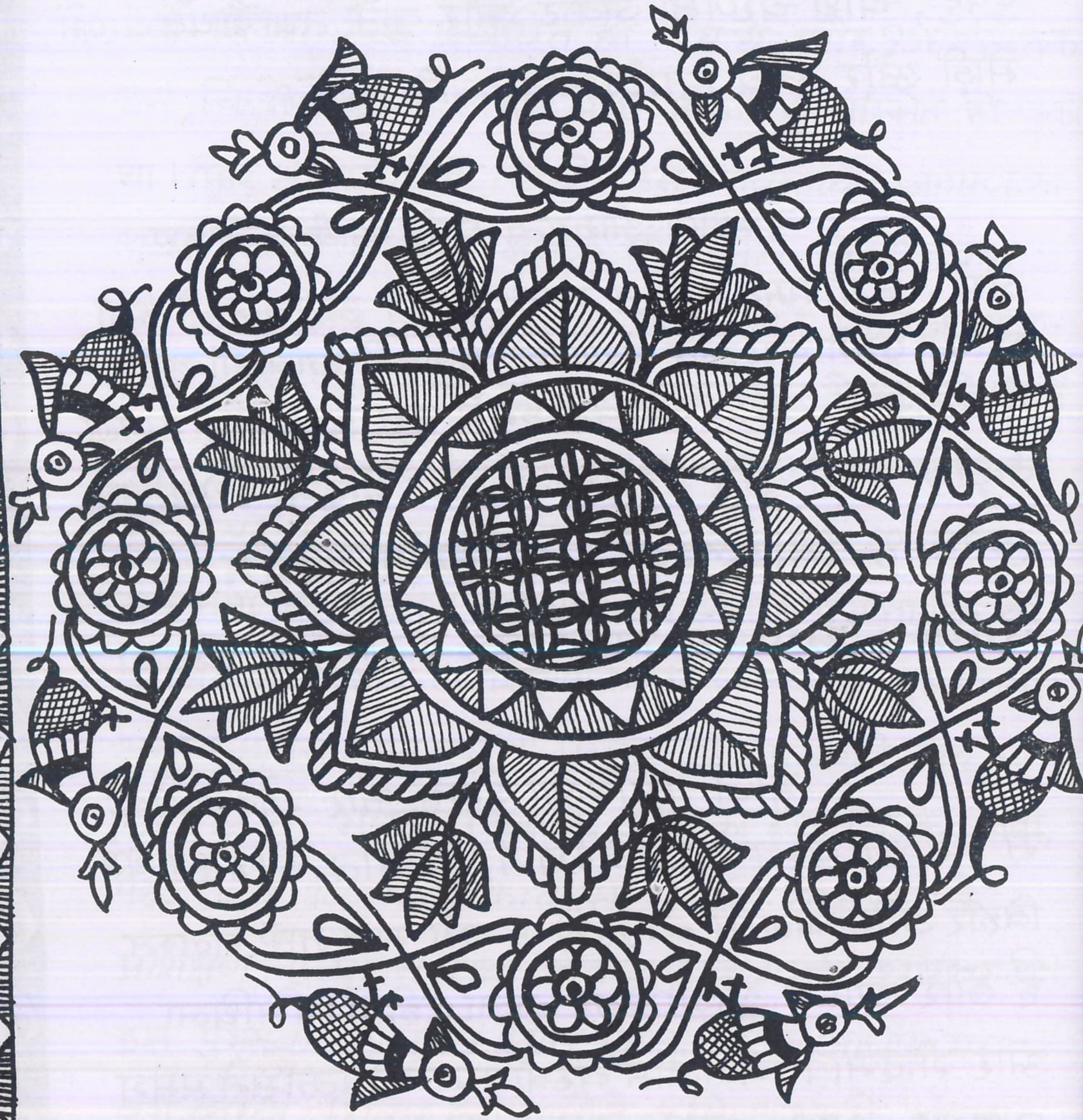
में ही मिथिलाकी महिला शिल्पियोंके ये चित्र गाँवकी देहरी लाँघकर महज चार-पाँच वर्षोंकी यात्राके बाद देश-विदेश तक प्रचारित हो गए थे, और १९६२ ई॰तक इन चित्रोंसे कला-जगत परिचित और अचम्भित हो चुका था। फिर भी मिथिला चित्रमें उस व्यावसायिक जागरणका चलन केवल मधुबनी क्षेत्रके पाँच-सात गाँवों तक सीमित था, और हस्तनिर्मित कागज पर बने रंगीन या रेखा-चित्र बनते-बिकते थे, जिसका लाभ मात्र दो जातिके लोगों तक बँधा था। उन्हीं दिनो मैं लोकचित्रोंसे अक्षर बनानेकी विधि पर काम कर रहा था और उसमें मुझे आशातीत सफलता भी मिली। वर्ष १९७४से मैंने मिथिला चित्रमें वस्त्रांकनके कार्य (प्रशिक्षणकी विधिके साथ) शुरु किया। अन्तमें, पाँच-सात वर्षोंके परीक्षण और प्रयोगके बाद, सन् १९८१ ई॰ में, **भारती विकास मंच**की स्थापनाके साथ, पहली बार किसी लोकचित्रमें सविधि वस्त्रांकनके प्रशिक्षण, उत्पादन तथा विक्रय-प्रबंधनकी धारा फूटी। इस पुस्तककी अप्रकाशित पाण्डुलिपिके आधार पर वर्ग करती शिल्प छात्राओंने क्रमिक रूपसे, प्रथम चरणमें कागज पर अभिनन्दन कार्ड, दूसरे चरणमें

कपड़े पर टेबल मैट्स और कुशन कवर, तीसरे चरणमें दुपट्टे, चौथे चरणमें जैकेट और कुर्ते तथा पाँचवेंचरणमें साड़ी और उच्च स्तरके चित्र बनाने लगीं।

प्रशिक्षण और उत्पादनके कार्य करते हुए जैसे-जैसे समय बीतता गया, हमारा अनुभव भी उसी गतिसे आगे बढ़ा और संस्थाकी गुणवती छात्राओं और शिल्पियोंके साथ मिलकर हमने इस पुस्तककी अगली कड़ीके रूपमें और भी पुस्तकों जैसे **गोदना चित्रशिक्षा** (भाग-१), **मिथिला कोर**, **मिथिला वस्त्रम**, **मिथिला अरिपन** का मौलिक ढाँचा तैयार किया।

आज मिथिला शैली और गोदना शैली में चित्रित वस्त्र देश-विदेशमें विख्यात हैं। इस कार्यमें बिहार और बिहारसे बाहरकी हजारों महिलाएँ संलग्न हैं और अपनी आजीविका चला रही हैं। मिथिला और गोदना चित्रशैलीमें वस्त्रांकनके विकासने समग्र मिथिलांचलमे नारी-जागरण और स्वावलम्बनका एक सशक्त आन्दोलन खड़ा कर दिया।

कमलदह



उत्पादन

पाठ - ८

उत्पादनका मतलब होता है किसी वस्तुको अपने हूनर या कौशलसे उसे ज्यादा उपयोगी बनाना। इस परिभाषाको इस तरह समझें कि जैसे रद्दी-फद्दी कागजको कूट-पीस कर एक कलाकार अपने हूनरसे पेपरमेशीकी सुन्दर वस्तुं बना लेता है; या एक कुम्हकार मिट्टीके ढेलोंसे सुन्दर बासन बना लेता है; या एक बढ़ई लकड़ीके टुकड़ोंसे कामकी कई चीजें बना लेता है; या एक चित्रकार रंगको अपने हूनर या अपनी कलासे कागज पर इस प्रकार उपयोग करता है कि वह कागज एक सुन्दर चित्र बन जाता है।

लेकिन केवल सुन्दर कोई सामान बना लेने से ही उस सामानका उत्पादन करना नहीं कहाता। यदि वही सामान इतना अच्छा या उपयोगी बन जाय कि

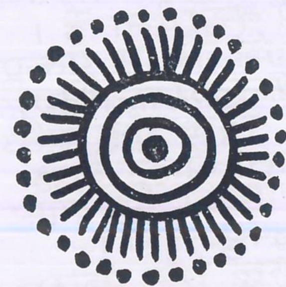
वह बिक भी जाय, और सामान बने-बिके इसका सिलसिला चल पड़े — तब माना जाएगा कि आप किसी वस्तुका उत्पादन कर रहे हैं। इस बातको इस प्रकार समझें कि मान लें आपने एक कपड़े पर सुन्दर कोर और बुट्टी डाल कर अच्छा रुमाल बनाया और आप उसे किसी व्यक्तिको उपहारमें दे दें, तो इस प्रकार बराबर पैसे लगाकर आप रुमाल नहीं बाँट सकते हैं और एक दिन आपको मुफ्तका यह कारोबार रोकना पड़ सकता है। लेकिन उसी रुमालको यदि आप बेच सकते हों तो इस कामको अपनी कलासे और आगे बढ़ाते हुए आप आमदनी भी कर सकते हैं। तब यह समझा जायेगा कि आप रुमालका उत्पादन कर रहे हैं।

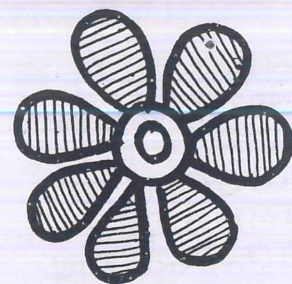
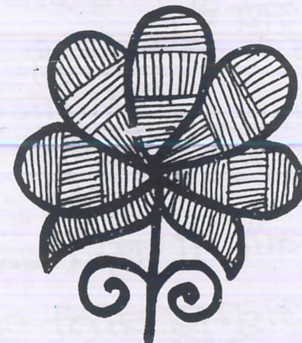
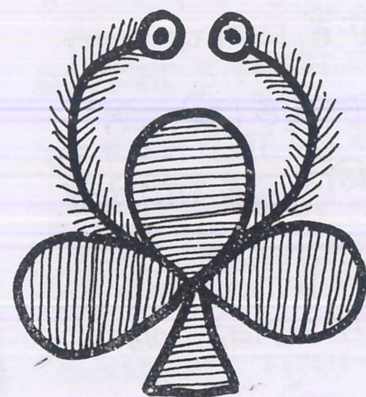
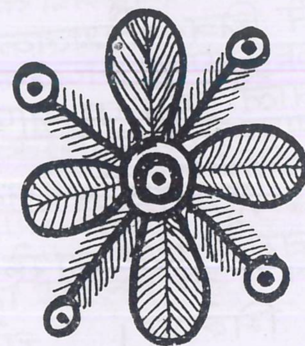
इन तमाम बातोंका आशय यह है कि किसी बस्तुका उत्पादन करनेसे पहले एक शिल्पीको कई बातों पर ध्यान देना पड़ सकता है। खास कर जब आप चित्रकला को लेकर किसी तरहका उत्पादन करना चाहें तो आपको यह ध्यान रखना पड़ेगा कि चित्र साफ, बेदाग और सोचा-समझा हो। सोचा-समझा कहनेका मतलब यह है कि

आप चित्र शुरु करनेसे पहले मनमें एक खाका बना लें— कहाँ बोर्डर रखना है, बोर्डरसे बाहर कितनी जगह छोड़ना है, बोर्डरके भीतरकी क्या योजना है, कहाँ क्या देना है। इस विचारके बाद स्थिर मनसे चित्रका अंकन करना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि जो कुछ आप बनाना चाहते हैं, वह कलात्मक, उपयोगी और विक्रयके लिए उपयुक्त हो। कहते हैं कि एक चित्रकार चित्र बननेसे पहले ही उसकी सुन्दरता देख लिए रहता सोच-समझ कर चित्र बनानेका यही अर्थ है।

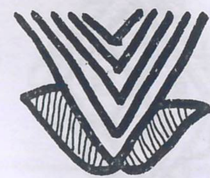
इस पाठमें कुछ पृष्ठ बुट्टीके और कुछ पृष्ठ कोर (बोर्डर) के दिखाए गए हैं। इन नमूनोंके आधार पर आप और भी बहुतेरे बना सकते हैं। इनके अभ्यासके साथ आप अनुभव करेंगे कि आपके आसपास, आपके घरेलू उपयोग में, ऐसी कौन-कौन सी वस्तुएँ हैं, जिन पर आप अपने चित्र-कौशलका उपयोग कर सकते हैं। कोरके बादवाले पृष्ठों पर आपकी सहायताके लिए कुछ सामग्रियों जैसे ग्रीटिंग कार्ड, टेबल मैट्स और कुशन कवर, दुपट्टोंके कुछ नमूने दिए जा रहे हैं। आशा है, इनसे आपको एक रास्ता मिलेगा। चरैवेति, चरैवेति! चलते रहें, चलते रहें!

बूटी











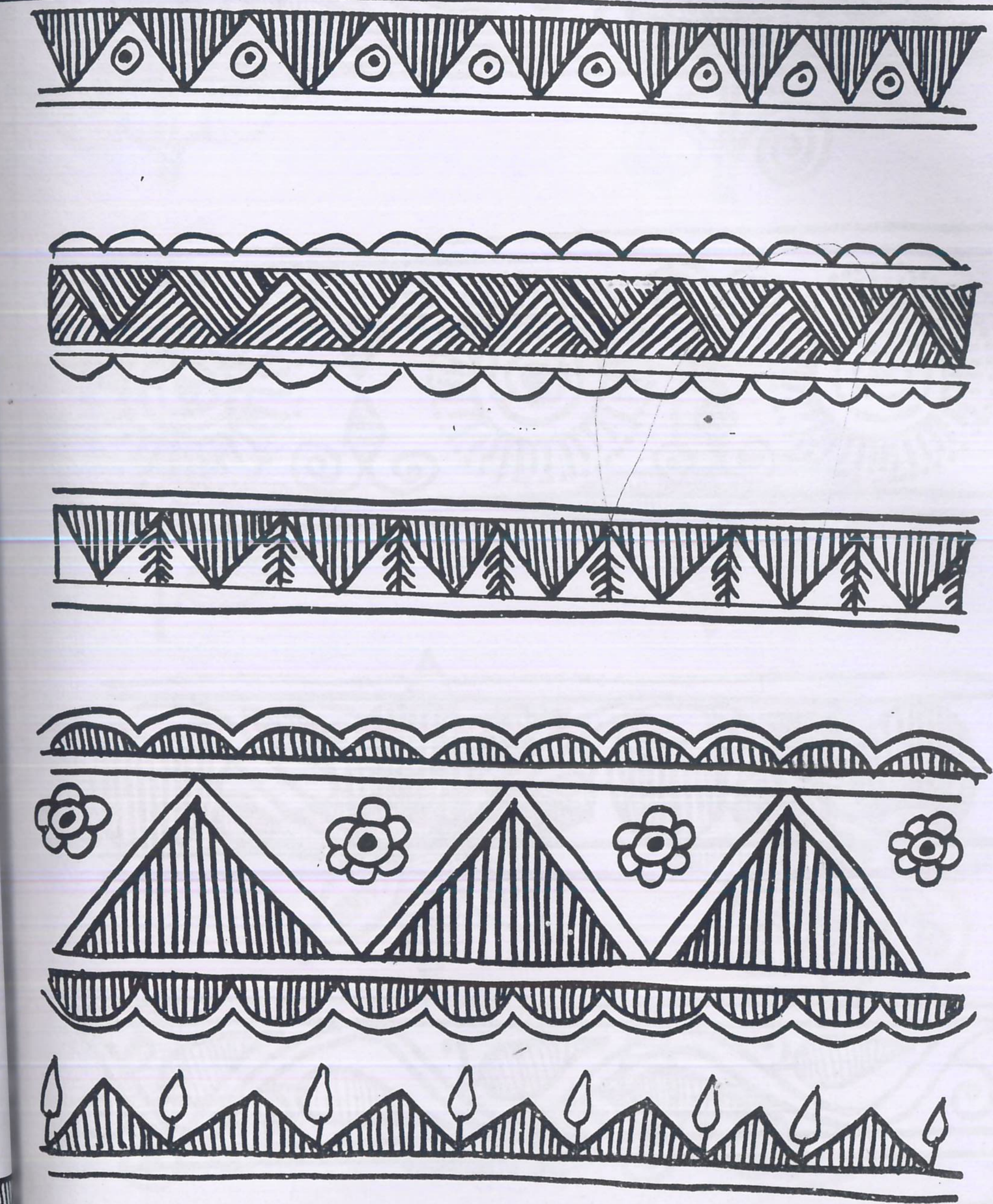


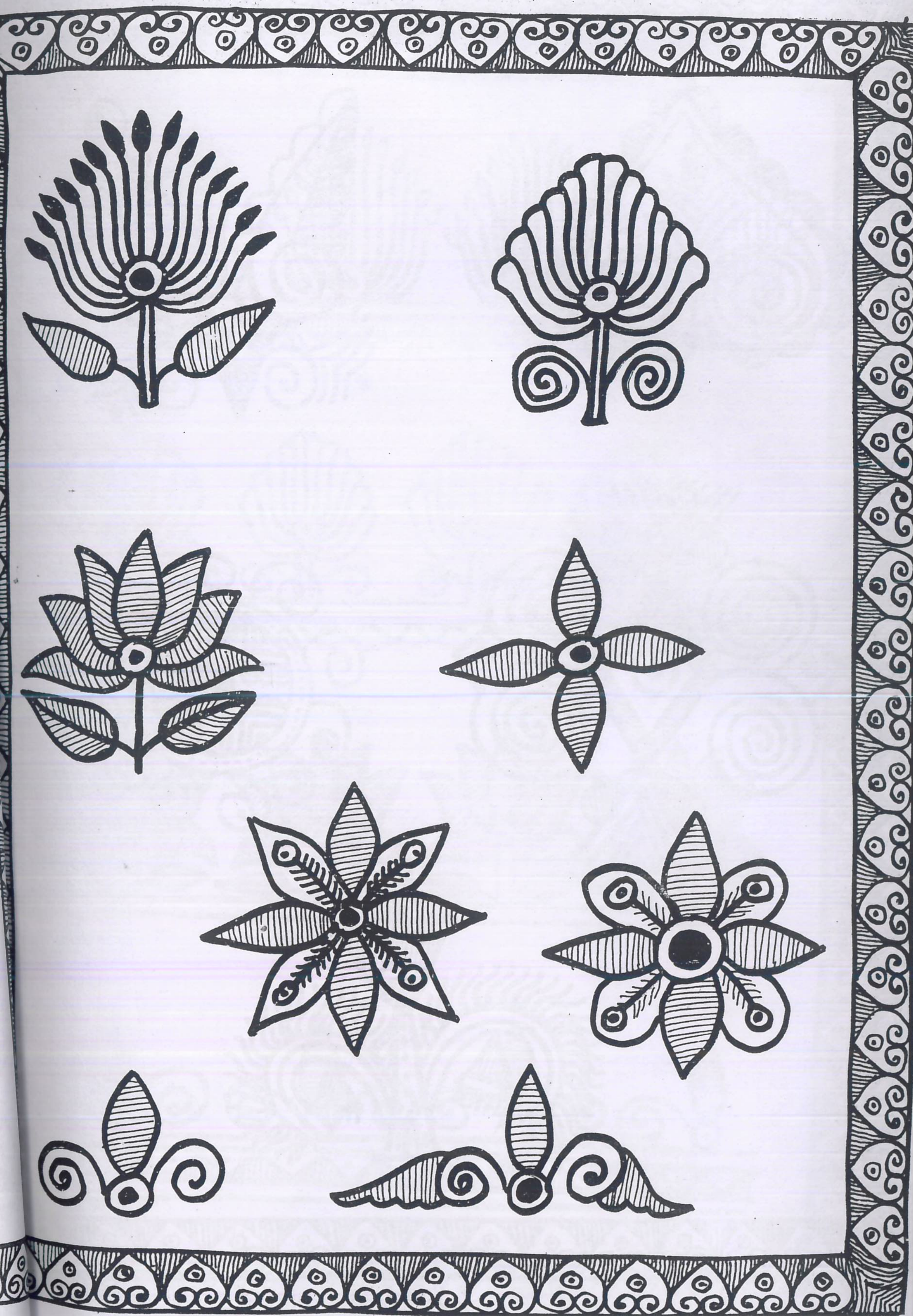







कोर (बोर्डर)







अभिनन्दन कार्ड



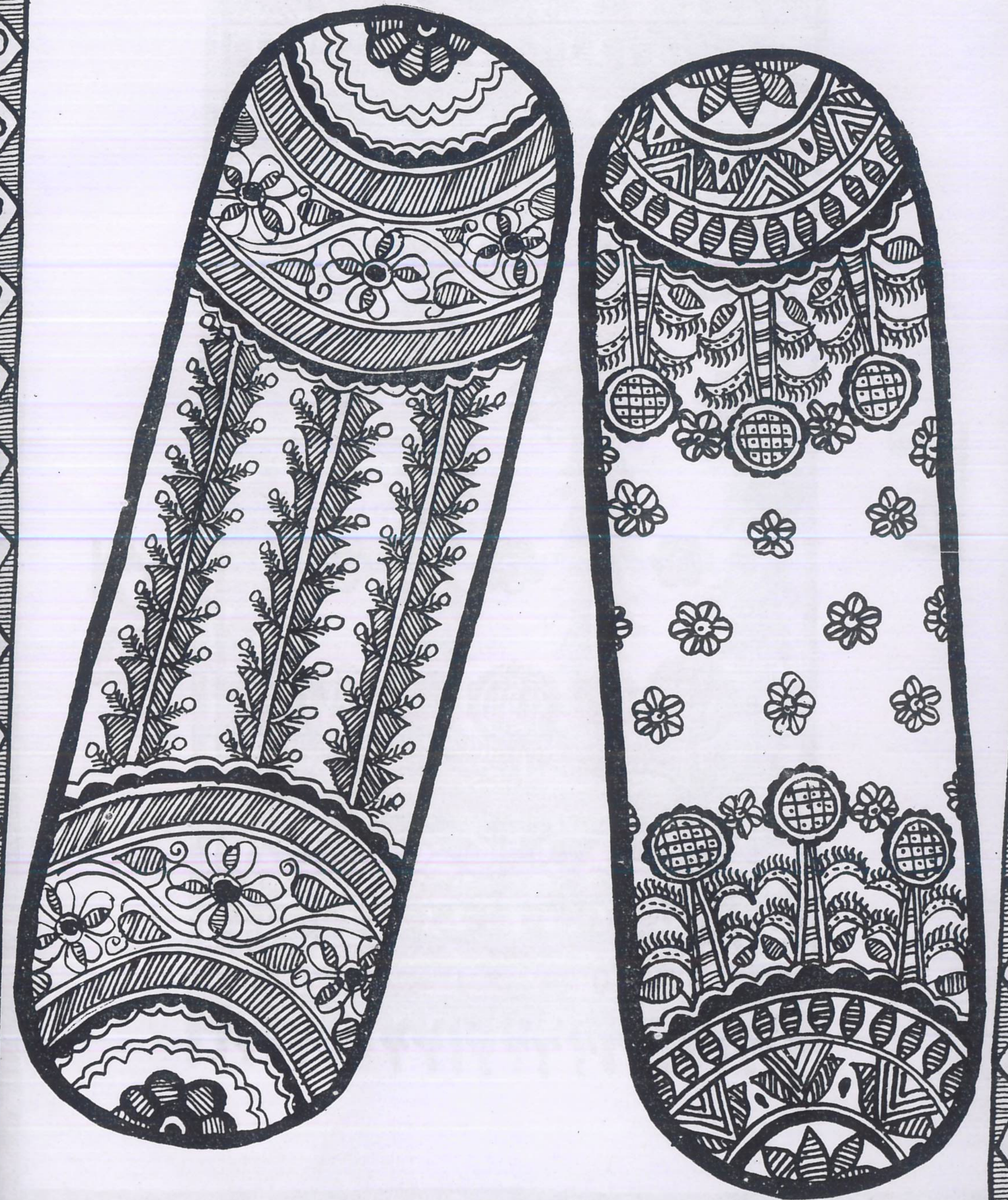
टेबल मैट



कुशन कवर



मसनद (बोल्स्टर)




दुपट्टा


दुपट्टा

प्रतीक

पाठ - १०

प्रतीकका अर्थ होता है चिन्ह ; किसी शब्द, संख्या, नाम, गुण या सिद्धान्त आदिका सूचक चिन्ह।

मिथिला चित्रशैलीमें प्रयुक्त होनेवाले प्रतीक लोकजीवनसे जुड़े दैनन्दिन उपयोगके अवयव हैं जिनके साहित्य, कला और धर्मकी दृष्टिसे विशेषार्थ होते हैं। उदाहरणके तौर पर, प्रथम पाठमें आपने अंकुशके बारेमें पढ़ा। अंकुश लोहेका बना एक औजार होता है, जो हाथीके चालक महावतके हाथमें होता है और उसी अंकुशके द्वारा महावत हाथीको नियंत्रणमें रखता है।

अंकुश श्रीगणेशजीके हाथमें सुशोभित एक

आयुध - विशेष है जो विद्या-बुद्धि, साहस, सफलता, शांति और शक्तिके प्रतीकके रूपमें जाना जाता है। अंकुश स्वयं श्रीगणेशजीका भी प्रतीक है।

पुरैन कहते हैं कमलके पत्ते को। मिथिला लोकचित्रमें पुरैनका उपयोग प्रायः प्रत्येक अरिपनके साथ किया जाता है। वस्तुतः इसका प्रयोग पूजाके थालके रूपमें किया जाता है। पंद्रह - बीस वर्ष पहले तक, मिथिलामें भोजके अवसर पर पुरैनके गोल पत्तों पर भोजन किया जाता था। पुरैन स्वस्तिका प्रतीक है।

कमलका प्रयोग केवल चित्रकला ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य, वास्तुकला एवं अन्यान्य कलाओंमे प्रचुरताके साथ हुआ है। कमल सुख-शांति और समृद्धिका प्रतीक है। कोमलता, सुन्दरता और दिव्य सुगंधि कमलके प्राकृतिक गुण हैं। कमलको देवी और देवताओंके आसनके रूपमें दर्शाया गया है। अनेक देवी-देवता कमलको अपने हाथमें धारण करते हैं। सुन्दरता और धनकी देवी श्रीलक्ष्मीको कमला कहा गया है।

कमलकी तरह ही **मछली**का भी मिथिला चित्रशैली, मिथिला जीवन और धर्म-साहित्यमें विशेष महत्व है। अनेकानेक धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं से सम्पन्न मत्स्य अत्यन्त लोकप्रिय प्रतीक है। मिथिलामें मछलीको शुभसूचक और सौभाग्य-दायिनी कहा गया है। लोकमान्यता है कि यात्राके समय दही और मछलीका दर्शन सफलतादायी होता है। पौराणिक मतानुसार, श्री-विष्णुका प्रथम अवतार मत्स्यावतार है। इसलिए धार्मिक दृष्टिसे मछलीको विष्णुका प्रतीक भी माना गया है। मिथिला चित्रशैलीमें मछलीको चंचल इच्छा और आनन्दका प्रतीक कहा गया है।

बाँस मिथिलाकी बहुत उपयोगी वनस्पति है जो अपनी सघनता और उर्वरताके लिए प्रसिद्ध है। बाँसको भरे-पूरे वंश या वंश-वृद्धि अथवा सम्पूर्ण मानवजातिके विकासके प्रतीकके रूपमें मान्यता है। वैवाहिक चित्रोंमें बाँसके अंकनका पारम्परीक उद्देश्य यही है कि नवदम्पति वंश-वृद्धिमें सफल हों। बाँस पुरुषका भी प्रतीक है।

सुग्गा या शुक प्रेम और आनन्दके देवता कामदेवका मित्र है और इसी अर्थमें यह मिथिला चित्र-कलामें प्रयुक्त होता है।

श्रीलक्ष्मीजी समुद्रकी बेटी हैं और **शंख** उनका छोटा भाई है। दंतकथा है कि जब लक्ष्मीजी श्री-विष्णुके साथ विवाहके बाद जाने लगीं तो बहनके प्रति अपार स्नेहके कारण शंख भी उनके साथ चला गया। बहन-बहनोईके प्रेममें उसने विपुल सम्पदासे भरपूर अपने राज्यका मोह नहीं किया। शंखके इसी त्याग और प्रेमके कारण श्रीविष्णु उसे अपने हाथमें सदैव धारण किए रहते हैं। **शंख** अटल निश्चय, सम्पदा और शक्तिका प्रतीक है।

हाथीको सिद्धि, समृद्धि, यश, कीर्ति और दिव्य गुणोंसे सम्पन्न शक्तिका प्रतीक माना गया है। सभी देवोंके प्रिय हस्ति सौभाग्य और सुख-शांतिके प्रदाता तथा उसके द्योतक प्रतीक हैं।

साँपको रक्षा और चिरकाल तक चलनेवाले काम-सुखके अलावा प्रजनन शक्तिका प्रतीक माना गया है।

रंग

पाठ-११

रंग और चित्रका संबंध वैसा ही है, जैसाकि शरीर और साँसका। रंग किसी चित्रका प्राणाधार होता है। चाहे वह रेखाचित्र हो या रंगीन चित्र — रंगकी विशिष्ट यही महत्ता है कि रंग नहीं तो चित्र नहीं।

वर्त्तमान समयमें भारतमें प्रचलित विभिन्न लोकचित्रों जैसे उड़ीसाके पटचित्र और तालपत्र, आंध्र प्रदेशकी कलमकारी, तमिलनाडु-कर्णाटकके कोलम चित्र या बिहारके मिथिला चित्र और गोदना चित्र — सभी तरहके चित्र प्राकृतिक रंगोंसे बनानेकी परम्परा रही है; कुछ रंग फूल-पत्तोंसे, कुछ रंग खनिजसे।

सन् उन्नीस सौ पैंसठ-छियासठ इस्वी तक मिथिला चित्र मुख्यतः वैवाहिक विधियोंमें कागज पर

या भित्ति अथवा भूमि पर अरिपनके रूपमें बनाए जाते थे। उस समय तक इन चित्रोंका व्यावसायिक रूपमें उत्पादन नहीं होता था। जब इस शैलीके चित्रोंको हस्तनिर्मित कागज पर बनाने और भारत सरकारद्वारा देश-देशान्तरमें इसके व्यापक प्रचारसे विक्रयका मार्ग प्रशस्त हुआ, तब इस शैलीके चटक रंग भित्तिसे उतर कर कागज पर अपनी छटा बिखेरने लगे। लेकिन चित्रकी इस यात्रामें रंगका पाथेय बदल गया।

मिथिला शैलीके भित्तिचित्र घरेलू या प्राकृतिक रंगोंसे बनाए जाते थे। अनेक अवसरों पर और प्रायः हर वर्ष मिट्टीकी दीवार पर चित्रकारीके लिए बहुत पक्के रंगकी जरूरत नहीं थी। लेकिन वही चित्र जब कागजके शीट पर व्यवसायके लिए बनने लगे तो बाजारू रंगके प्रयोग भी बढ़ने लगे।

वर्तमान समयमें, व्यावसायिक दृष्टिसे कागज और कपड़े पर कथाचित्र बननेके अतिरिक्त मुख्य रूपसे पहनावेके वस्त्र बन रहे हैं। कुछ लोग

कागज पर घरेलू रंगोंका उपयोग करते हैं। पहनावेके कपड़ोंकी रंगाई तो प्राकृतिक रंगोंसे होती है, लेकिन उस पर चित्रकारी केवल कपड़ोंके रासायनिक रंगसे की जा रही है।

प्राकृतिक रंगमें लोकचित्रोंकी आत्मा बसती है। मिथिला चित्रशैलीके उत्पादनोंमें इन दिनो प्राकृतिक रंगके उपयोग कम हो रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि शिल्पी रंगोंके प्रति गंभीर नहीं हैं और उनमें सीखने या खोज करनेकी प्रवृत्ति कम हो रही है। यह स्थिति चिंताजनक है।

इस पुस्तकमें आपको केवल स्वयं रंग तैयार करनेके प्रति उत्साहित किया जा रहा है। रंगोंकी तैयारी पर अगली पुस्तकमें प्रकाश डाला जाएगा। प्रारम्भिक अवस्थामें आप बाजारसे पुड़ियावाले रंग घोलकर चित्रोंका अभ्यास करें।

काला रंग बनानके लिए पहले लोग दीया, डिबिया (ढिबरी), लालटेन या तवेसे कालिख जमा करके, उसे गायके गोबरमें सान-घोल कर फिर कपड़छान करके रंग तैयार करते थे। यदि आप ऐसा

नहीं कर सकते तो बाजारसे सौ ग्राम लोहेका क्षार (भस्म) और हर्रेका पावडर ले आइए। दस-पंद्रह एम-एल. रंगके लिए एक कप पानी स्टोव पर चढ़ा कर गर्म करें। पानी जब गर्म हो जाय, तो पहले उसमें दो चम्मच हर्रेका पावडर डालें और जब पानी पूरा खौलने लगे तो एक चम्मच लौह भस्म डाल कर उसे चला दें। जब पानी चौथाई कपसे भी कम हो जाय तो उसे कपड़छान करके किसी दवातमें रख लें। यदि रंगकी ऊपरी सतह पर छाले जमजाँय, तो उसे किसी सींकसे बाहर निकाल देना चाहिए। यदि तैयार रंग बहुत पतला लगे तो रंगको एक कटोरेमें रख कर उसे दो-तीन घंटे तक धूपमें रखना चाहिए। इससे रंग किंचित गाढ़ा हो जाएगा।

प्रारंभिक स्तर पर आसानीसे बननेवाले रंगोंकी प्रक्रिया समझ कर कुछ प्रयोग करते रहना चाहिए। मिथिला चित्र और गोदना चित्रके शिल्पी कागजकी पृष्ठभूमिको रंगनेके लिए गायके गोबरका उपयोग करते हैं। उस तरहका रंग अनारके छिलकेको भी पानीमें गर्म करनसे तैयार होता है।

पारिजात (सिंगरहार) के नन्हे फूलोंकी पीली

डंटीको पानीमें गर्म करनेसे सुनहला पीला रंग बनता है।

जड़ी-बूटी या प्राकृतिक रंगोंकी सामग्री बेचनेवाली दूकानमें इमलीका क्षार (टमरिन्डा ऐश) मिलता है। यह क्षार रंगीन फूल-पत्तोंसे रंग निचोड़नेमें बहुत अच्छा है। आप रंगीन फूलोंको — जैसे उड़हुलके लाल फूल, अपराजिताके नीले फूल — तोड़ लें और मुट्ठी भर फूलको अलग-अलग किसी वर्तनमें रख कर गर्म करें। जब पानी रंगीन होने लगे तब उसमें चुटकी भर टमरिन्डा भस्म मिला दें। जब पानी किंचित् रह जाय तो उसे उतार लें और कपड़ेसे छान-निचोड़ कर रंग प्राप्त करें।

लोकचित्रके विद्यार्थियोंको तरह-तरहके फूल-पत्तोंसे रंग बनानेकी दिशामें सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए, किन्तु इस खेलमें ध्यान रहे कि इससे पेड़-पौधोंका नुकशान नहीं हो। पेड़-पौधे हमारे मित्र ही नहीं, हमारे पालक भी हैं।

शुभमस्तु !



मुद्रक : श्री सिद्धनाथ प्रेस, नयाटोला, पटना- 4, फोन : 656463